लखनपुर के कत्यूर

डा० लक्ष्मण सिंह मनराल

ॐ स्वस्ति

संसार भव वन्धन नहीं है और नहीं माया जाल है यह सृष्टा की सर्वोत्तम कलाकृति है उसमें सत्, चित् और आनन्द भरा पड़ा है।

(श्री राम शर्मा आचार्य)

लखनपुर के कत्यूर

कत्यूरी वंश के उत्थान से पतन तक की
ऐतिहासिक यात्रा
(लखनपुर जीर्णोद्धार तक)

डा० लक्ष्मण सिंह मनराल
(गोल्ड मेडेलिस्ट, आयुर्वेद रत्न) डी.एस.सी. (आयु०)
गायत्री भवन, चौखुटिया, गनाई, अल्मोड़ा

लखनपुर के कत्यूर

प्रथम संस्करण : 1996

सर्वाधिकार सुरक्षित :
डा० लक्ष्मण सिंह मनराल

मूल्य Rs 20=00

मुद्रक एवं प्रकाशक
अशीष प्रिंटर्स एण्ड पब्लिकेशन, (प्रा०) लिमिटेड
38 अमृत नगर, नई दिल्ली–110003
दूरभाष : 4618335, 4633131, 4642543

अपनी बात

मानव शरीर की संरचना ऐसे तत्वों के सम्मिश्रण से हुई है कि उसको अपनी संस्कृति से सहज ही मोह होने लगता है। तभी तो अन्तःकरण से वन्दना के ये बोल फूट पड़ते हैं–

"अस्त्युतरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः"

संस्कृति से जुड़े रहने के लिए अपने इतिहास (अतीत) की जानकारी का होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इससे जहाँ पूर्वजों की उपलब्धियों, परम्पराओं और दुर्बलताओं का बोध होता है वहीं भविष्य के लिए अधिक सर्तकता ओर तार्किक दृष्टिकोण की प्रेरणा भी मिलती है।

"आज जो हमारे मध्य नहीं है उनको सादर याद करें। साथ ही वर्तमान पीढ़ी को अधिक स्नेह व सम्मान दें। स्वदेश, स्वधर्म व स्वजाति की सेवा के लिए अतीत की अच्छी बातों को अपनाते हुए ऐतिहासिक भूलों की पुनरावृत्ति न होने दें। यही है इतिहास की शिक्षा का मूल सूत्र"।

युग दृष्टा पं० श्रीराम शर्मा, आचार्य जी ने अखण्ड–ज्योति के एक अंक में सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि विश्व का प्रथम मानव आर्यवर्त में ही जन्मा था। ऋषि परम्परा ने इन तपोवनों में मानवीय संस्कृति का बीजारोपण किया था। कालान्तर में यहाँ के मूल निवासियों ने देशी–विदेशी यात्रियों, जिज्ञासुओं तथा आक्रान्ताओं के साथ सम्पर्क, समन्वय तथा संघर्ष कर एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया जो बाद में कत्यूरी सभ्यता के नाम से जानी गयी।

इस धरा ने समय–समय पर ऐसे नवरत्नों को जन्म दिया जो अपने कार्यकाल में युगप्रवर्तक और जननायक तो थे ही भविष्य के लिये भी प्रेरणा स्रोत बन गये। इतिहासकारों ने ऐसे ही महामानवों में कत्यूरी नरेशों की गणना की है।

उन्होंने उस अस्थिर युग में सारी प्रजा को एक छत्र, एक श्रृंखला के अन्तर्गत लाकर धर्मराज्य की स्थापना की थी। प्रजा ने उन्हें इतना स्नेह व सहयोग दिया कि सैकड़ों वर्षों तक कत्यूरी राज्य–प्रशासन स्वर्ण–युग के रूप में चलता रहा।

जिस प्रकार टेहरी नरेश को "बोलदा–बद्रीनाथ" कहते हैं उसी प्रकार कत्यूरों की पूजा कत्यूर–देवता, भूमिया नौलाकन्थापुरी, जै–जिया आदि नामों से होती आ रही है। किसी राजवंश की इस प्रकार पूजा–अर्चना उनकी ऐतिहासिकता ही

नहीं अवतारी पुरुष होना भी सिद्ध करती है। अपने यात्रा–भ्रमण के दौरान चीनी यात्री ह्वेनस्वांग ने यहां के विशाल देवालयों को देखकर कहा था इनको कोई दैवी शक्ति–सम्पन्न महा मानव ही बनवा सकते हैं।

गिरिराज, चक्र चूड़ामणि उपाधियों से विभूषित कत्यूरी सम्राटों के सम्बन्ध में मुझ जैसा साधन–हीन साहित्य कला, समालोचना और अन्वेशक गुणों से सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति कुछ लिखने का साहस करे, यह स्वयं में ही हास्यास्पद है।

लगभग पचास वर्ष पूर्व बाल्यकाल में लखनपुर के प्रथम दर्शन के बाद एक अज्ञात श्रद्धा सुमन मेरे अर्न्तमन में पनपने लगा। तभी से लगातार इस दिशा में जहाँ से भी जो कुछ मिला सुनता रहा, पढ़ता रहा। राजुला का पीहर, जिया का मैत ही नहीं, कत्यूरों से सम्बन्धित ऐतिहासिक स्थलों के अलावा कैलाश से कन्या–कुमारी तक, गोमुख से गंगा सागर तक के भ्रमण अनुभवों, पुरातत्व सामग्री और विद्वानों के शोध–ग्रन्थों तथा लोकगीतों, लोक–कथाओं के रूप में यत्र–तत्र बिखरी कड़ियों को एक स्थान पर इकट्ठा करना मेरा लक्ष्य बन गया था। फलस्वरूप कत्यूरों के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी उपलब्ध करता रहा।

इन पंक्तियों के लिखे जाने तक लखनपुर जीर्णोद्धार हेतु गत वर्षों में तीन सौ छियासी दिनों तक लखनपुर जाकर वहाँ की पावन–माटी के दर्शनों से एक अदृश्य प्रेरणा व शक्ति का संचार होता गया। इसको कत्यूरों की कृपा–आशीर्वाद मानकर उनके लखनपुर (उनकी अन्तिम कर्मभूमि) त्यागने की पांच सौवीं वर्ष गाँठ पर यह "लखनपुर के कत्यूर" पुस्तक उन देवपुरुषों को श्रद्धाजंलि रूप में समर्पित करते हुए आपके कर–कमलों में भेंट करता हूँ। कत्यूरों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी देने और भ्रान्तियों को सुलझाने में यदि सफल रहा तो अपने इस गिलहरी प्रयास को सार्थक मानूंगा।

इस पुस्तक को लिखने में बहुत सी धार्मिक व ऐतिहासिक ग्रन्थों के अलावा प्रसिद्ध इतिहासकार सर्व श्री ऐटकिन्सन, पं० राहुल सांस्कृत्यायन, पं० बद्री दत्त पाण्डेय, डा० शिव प्रसाद डबराल, डा० प्रयाग जोशी, डा० रणवीर सिंह चौहान, डा० नारायणदत्त पालीवाल आदि मूर्धन्य इतिहासकारों के श्रम की भी सहायता ली गई है। इनके सहयोग के बिना मेरा यह गुरुतर कार्य सम्भव न होता। अतः मैं इनका आभारी हूँ।

इसके अतिरिक्त मेरे बहुत से विद्वान मित्रों ने इस पुस्तक की भूलों को सुधारने में मुझे पूर्ण सहयोग दिया उनका में कृतज्ञ हूँ। इसके वावजूद रह गई कमियों

के लिए विद्वान पाठकों के सुझावों का स्वागत है। कलेवर विस्तार के कारण पाद टिप्पणियाँ न दे सका जिसका मुझे खेद है।

आशीश प्रिन्टर्स एवं पब्लिकेशन प्रा० लि०, नई दिल्ली के व्यवस्थापक श्री नारायण सिंह बिष्ट, निवासी–सिरोली, गनाई, अल्मोड़ा की उदारता एवं मातृभूमि प्रेम के कारण ही इस पुस्तक को आपके कर–कमलों तक पहुंचाने में सफल हो पाया हूँ उनका भी मैं आभारी हूँ।

जिन महानुभावों ने "लखनपुर के कत्यूर" पुस्तक के लिए अपने अमूल्य विचार आशीर्वाद स्वरूप प्रेषित किये हैं। इसके लिए में उनका कृतज्ञ हूँ।

डा० लक्ष्मण सिंह मनराल

३ दिसम्बर १९९५
गायत्री भवन
चौखुटिया, गनाई, अल्मोड़ा

दो शब्द

कत्यूरों के शौर्य, कीर्ति और दीर्घ कालीन शासन व्यवस्था पर मुझको विगत ६० वर्षों के अध्ययन व शोध कार्य का सुअवसर प्राप्त हुआ, मेरा यह मत है कि वर्तमान राजनीतिक चेतना सामाजिक व्यवसथा व धार्मिक वातावरण के पीछे कत्यूरी संस्कृति की अमिट छाप परिलक्षित है। कत्यूरों के सम्बन्ध में पुस्तक डा० लक्ष्मण सिंह मनराल द्वारा लखनपुर के कत्यूर पुस्तक प्रमाणित सिद्ध होगी ऐसा मेरा विचार है। क्योंकि डा० मनराल के अनुभव व साधना से मैं सुपरिचित हूँ अतः इस प्रयास के लिए धन्यवाद।

डा० शिवप्रसाद डबराल (चारण)
(दुगड्डा गढ़वाल)

उत्तराखण्ड में सात सौ वर्षों तक शासन करने वाली राजसत्ता महान कत्यूरी संघ रही है इतनी दीर्घावधि तक एक छत्र शासन करने वाला राजवंश विश्व के इतिहास में दूसरा नहीं है। कत्यूरी संघ ने उत्तराखण्ड की धार्मिक सांस्कृतिक–सामाजिक आर्थिक उन्नति में सदैव योगदान दिया। उत्तराखण्ड के असंख्य मंदिर–नौले–तराई भावर की हरियाली उन्हीं की देन है। उन्होंने पीलीभीत–सहारनपुर तक की मंडियों पर भी अधिकार रखा था। भोट का व्यापार भी अधीनस्थ रखा था। कत्यूरियों के प्रति जनता की अपार श्रद्धा थी तभी तो आज भी ढोल–हुड़की बजाने वाला जब गा उठता है–

–रानी जिया की भूमि मा नौ लाख कत्यूरी जरमी गीन''....।

तब दूध पीते बच्चे भी असहाय वृहद भी कत्यूरी जागर मंडाण में शब्द सुनते ही नाच उठते हैं। कत्यूरी पश्वा अवतरित होकर कत्यूरी राज्य के प्रति निष्ठा की भावना दर्शाते दिखते हैं।

परन्तु खेद की बात है इतने महान राजवंश की राजमुद्राऐं अभिलेख व सिक्के नहीं मिलते हैं। उनके द्वारा बनाये गये मंदिर भग्न पड़ते जा रहे हैं इस दिशा में मैने अपने भ्रमण में जब चौखुटिया वैराट का लखनपुर गढ़ को पुर्नजीवित देखा तो मेरा हृदय गद–गद हो उठा। इस दिशा में डा० लक्ष्मण सिंह मनराल जी का कार्य बड़ा ही प्रशंसनीय है उन्होंने धरती की

मिट्टी का मूल्य समझा। महान कत्यूरी राजवंश की प्रमुख गढ़ी लोकगाथाओं की राजगढ़ी–लखनपुर को दर्शनीय स्थल बनाकर पर्यटन का भी महत्व बढ़ाया है। इसके क्षेत्रीय जनता का सहयोग भी नई चेतना का स्रोत रहा है। आशा है इस महान कत्यूरी संघ के समय के स्मारक प्रचलन के सिक्के हथियार–लेख– शासन पत्र हम सभी सम्भाल कर रखेंगे।

डा० रणवीर सिंह चौहान,
इतिहास प्रवक्ता (गढ़वाल विश्वविद्यालय)
लैन्सडाउन गढ़वाल

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि डा० लक्ष्मण सिंह मनराल द्वारा लखनपुर के कत्यूर पुस्तक का आलेख तैयार किया जा रहा है। कत्यूरी सभ्यता, उनकी सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था उत्थान और पतन का एक लम्बा और अद्वितीय ऐतिहासिक संयोग था जिसने न अपितु उत्तरांचल की बल्कि सम्पूर्ण भारत वर्ष के इतिहास को नई दिशा देने में कत्यूरी की अहम भूमिका रही है। आज आवश्यकता है उनके बारे में अधिक से अधिक जानकारी एकत्र कर प्रकाशित हो ताकि भावी पीढ़ियां उनसे दिशा निर्देश ले सकें। इस दिशा में डा० मनराल का यह प्रयास सराहनीय है मेरी अनेक शुभकामनायें

हरीश रावत पूर्व सांसद,
अध्यक्ष अखिल भारतीय कांग्रेस सेवादल (ई)

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
1.	देवात्मा हिमालय	1
2.	ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	3
3.	कत्यूर वंश का प्रार्दुभाव	9
4.	कत्यूरी वंशावली	16
5.	कत्यूर काल की धर्म व्यवस्था	20
6.	कत्यूरी शासन व्यवस्था	31
7.	जागर एक पूजा विधि	41
8.	कत्यूर काल की नारी	43
9.	बोली–भाषा–लिपि	47
10.	लखनपुर	50
11.	लखनपुर जीर्णोद्धार	70
12.	कत्यूरी राज्य के पतन के कारण	82
13.	उपसंहार	85
14.	महापुरुषोवाच	91
15.	झोड़ा लखनपुर	97

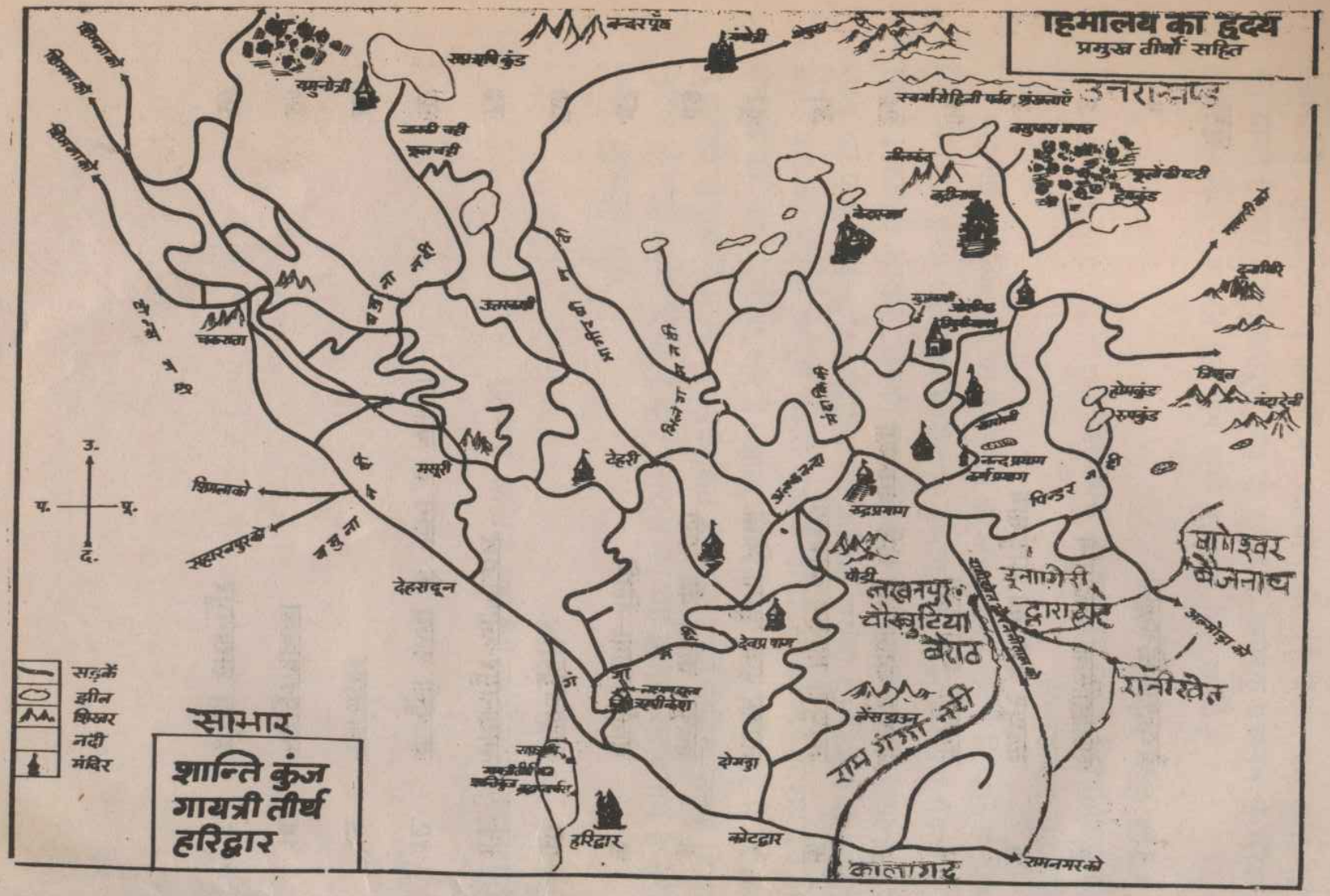
हिमालय का हृदय
प्रमुख तीर्थों सहित
उत्तराखण्ड
यमुनोत्री
गंगोत्री
केदारनाथ
बदरीनाथ
हेमकुंड
रुद्रप्रयाग
कर्णप्रयाग
नन्दप्रयाग
विष्णुप्रयाग
जोशीमठ
चकराता
मसूरी
देहरादून
देवप्रयाग
लाखनपुर
चौकुटिया
बैराठ
इनागोरी
द्वाराहाट
बागेश्वर
बैजनाथ
रानीखेत
रामगंगा नदी
कोटद्वार
हरिद्वार
कालागढ़
रामनगर को
सहारनपुर को
हिमाचल को
सड़कें
ट्रेन
शिखर
नदी
मंदिर
साभार
शान्ति कुंज
गायत्री तीर्थ
हरिद्वार

देवात्मा हिमालय

साधूनां पुण्य शीलानां, मुनीनां पुण्य कर्मणाम्।
त्वं सदा संश्रय शैलः स्वर्ग मार्गा भिकाक्षिणाम्।।

हे शैलराज ! पुनीतशील सम्पन्न सज्जन तुम्हारा ही आश्रय लेते हैं। धर्म का रहस्य जानने वाले मुनिजनों को तुम्हारे आंचल में ही साधना के लिए समुचित स्थान प्राप्त होता है। उत्तम लोकों की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति तुम्हारा आश्रय लेकर ही वांछित फल प्राप्त करते हैं।

-- ***महाभारत वन पर्व ४२-२२***

देवात्मा हिमालय अनादिकाल से आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र रहा है। इसी को धरती का स्वर्ग कहा गया है। यहीं से आर्य संस्कृति का उदय हुआ। यह पावन प्रदेश ऋषियों की तपस्थली तथा महापुरुषों की कर्मभूमि रही है। पर्वतराज हिमालय का यह संवेदनशील क्षेत्र जहां से आज भी दिव्य चेतना भक्ति का सूक्ष्मप्रवाह प्रभावित होता है। कश्मीर से नेपाल तक फैला है। पुराणों में इसकों पाँच खण्डों में विभक्त किया गया है। (१) हिमवत्सखण्ड (नेपाल) (२) मानसखण्ड (कुमाँऊ) (३) केदारखण्ड (गढ़वाल) (४) जालंधर (हिमांचल प्रदेश) (५) कश्मीर मानस और केदारखण्ड (उत्तराखण्ड) को हिमालय का हृदय तथा दैवी ऊर्जा सम्पन्न क्षेत्र माना गया है।

सृष्टि के उत्थान के साथ ही इस क्षेत्र के विकास का इतिहास भी जुड़ा है। हमारी संस्कृति के प्राचीन अवशेष यहाँ विद्यमान दिखाई देते हैं। ऋग्वेद में गंगा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु आदि नदियों का विस्तृत वर्णन है।

स्कन्ध पुराण में इस भूखण्ड की महिमा का वर्णन, देवी भागवत् में नर–नारायण की तपस्या का उल्लेख और महाभारत में उत्तराखण्ड का व्यापक वर्णन, महाकवि कालीदास, माघ, मारचि की काव्य रचनाओं में हिमालय की गौरव गाथा, मेघदूत में हिमालय वासी यक्ष–यक्षिणी का विरह वर्णन, देवाधि–देव–महादेव की क्रीड़ास्थली कैलाश, मानसरावेर, पार्वती का मैता, विष्णुधाम, श्री बद्रीनाथ, गंगा का उद्‌गम गोमुख, भगीरथ की तप स्थली, ज्योतिष्पीठ जोशीमठ, महर्षि पांतजलि का संगीत साधना केन्द्र, रुद्रप्रयाग,

रामराज्य स्थापनार्थ राम की तपस्थली, देवप्रयाग, सूत, शौनकादि, ऋषियों की कथावाचक भूमि, शिवालिक पहाड़ियाँ, उत्तरपथ का प्रवेशद्वार, हरिद्वार द्वादस ज्योर्तिलिंगों में केदारनाथ, जागेश्वर, यज्ञविज्ञान के शोधकर्ता याज्ञवलक्य का त्रिजुगी नारायण नारद की तपस्थली, गुप्तवासी पांण्डवों का संतोपथ आदि सब तीर्थ यहीं हैं।

तत्वचिन्तकों का विश्राम स्थल, योगियों का प्रकाशयुक्त, कर्मयोगियों की कर्मभूमि, ज्ञानियों का ज्ञान श्रोत, कवियों का प्रेरणा प्रवाह, शान्ति श्रद्धालुओं का आश्रयस्थल और जिज्ञासुओं का प्रवेशपथ यही देवात्मा हिमालय रहा है।

विधाता ने इस दिव्य भूमि की रचना में कुछ भी कसर नहीं छोड़ी है। महाहिमालय के हत्दयवेश लेकर लघु हिमालय के पाद प्रवेश तक फैला यह भूखण्ड देव, दानव, सिद्ध गन्धर्व, नाग किन्नर, यक्ष व मानव को जन्म देकर सृष्टि की मानवीय रचना और उसके विकास में युगों–२ से सहायक रहा है। वेदव्यास जी महाभारत के शान्ति पर्व में लिखते हैं–

हे शैलराज ! तुम्हारे अनेक हिमाच्छादित शिखरों के सम्मुख मेरा मस्तक श्रद्धा से नत होता है। जिस प्रकार पुत्र माता–पिता के अंक में विराजित रहता है। उसी प्रकार तुम्हारे आँगन में मैं इतने वर्षों तक सुखी व निश्चिन्त रहा हूँ।'' ***(शान्ति पर्व)***

''देवात्मा हिमालय तुम्हारी जय हो।''

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

अभिलेखों, मूर्तियों, प्राचीन ग्रंथों, मन्दिरों, किलो, वशांवलियों, लोककथाओं, लोकमान्यताओं, लोकगीतों, देशी विदेशी विद्धानों के शोध निबन्धों और पुरातत्व सामग्री के गहन–अध्ययन से यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि यहां के आर्यों के आगमन से पूर्व ही मानव का विकास हो चुका था। विकासशील मानव ने जब प्रकृति में विस्मय कारी उतंग पर्वत शिखर, गहरे गर्तों में भयावह नदी नालों की भीषण गर्जना, वन्य पशुओं की हृदय विदारक चिंघाड़ आदि प्रकृति के परिवर्तित तनों को नजदीक से देखते–देखते उनको रोकने में असमर्थ पाकर दैवी शक्तियों के सामने नत मस्तक हो गया। और वह अपने पशुओं व परिवार जनों की रक्षा के लिए पर्वत रूप "शिव", जल रूप "विष्णु" तथा प्रकृति रूपी "शक्ति" की उपासना देवा के रूप में करने लगे। इस प्रकार समूहों के रूप में रह कर अपना जीवन प्रकृति रूपी दैव के संरक्षण में सुख पूर्वक व्यतीत करने लगे थे।

पाषाण कालीन आदि मानव के पाषाण उपकरण पश्चिमी रामगंगा (अल्मोड़ा) खुटानी (नैनीताल) पिथौरागढ़ मार्ग पर, लाखाउडियार, मलारी की मानव–कब्र ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष पूर्व की मानव सभ्यता के प्रमाण हैं।

कुछ इतिहास कारों का मानना है कि आर्यों ने मध्य एशिया से चलकर आक्सांस नदी पार कर दक्षिण के दुर्गम पर्वतों को लांघते हुए हिमालय के प्रांगण में प्रवेश किया था तब यहां दरद, भिल्ल, तंगड़, बोल, खश, नाग जाति के छोटे–छोटे राज्य थे। कोलापुर के राजा के साथ आर्यों के राजा सत्यसंघ का श्रीनगर (गढ़वाल) में भयंकर युद्ध हुआ। अन्य राजाओं की तरह श्रीनगर पर भी आर्यों का अधिकार हो गया।

इन तमाम मूल निवासियों को राजा ने अपने अधीन कर लिया। और उन पर शासन करने लगे। लेकिन उनके जातीय अवशेष चिन्ह आज भी शेष हैं।

वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव सीता खोज में जाने वाले दल को उत्तरदिशा

में पुलिङ सूरसेन, भरत, कुरु भद्र, कम्बोज, शकों के राज्य व नगरों के बाद हिमवंत पर्वत, देवदारु के बनों, लोघ पदमक खण्डों में पर्वतों के बाद कैलाश, उसके पास बहुत बड़े सरोवर हैं। वहीं सीता को ढूढने का वर्णन आया है।

मेघदूत में कालीदास जी लिखते हैं "क्रौंच्नगिरी (कुमाँऊ) के ऊपर से होकर तुम गुजरना (बादलों के लिए)"। महाभारत में शक जाति का बृहद वर्णन आया है। कौरवों की तरफ से खस, एकसन, हयर्दी, प्रदरा, दीर्घवेणु (लामा) कुलिन्द, तगंण ओर परतगंण जाति के योद्धा लड़े थे।

भागवत पुराण में खस जाति का उल्लेख आया है। ये पशुचारक व कृषक थे। पितरों को पूजते थे। ग्राम देवता को पशुबलि देते थे। गौ के प्रति इनके पूज्य भाव थे। भिल्ल जाति को जीतकर लघु हिमालय में एक घोर से नेपाल तक उधर कश्मीर तक अपना अधिकार जमा लिया था। ईसा पूर्व पाँचवी सदी तक खस बड़े प्रभावशाली हो गये थे। नन्द वशं कुलिन्द खसों की ही एक शाखा थी। कौटिल्य ने इनको अपनी कूटनीति से युद्ध में हराकर मगध के सिंहासन पर मौर्यवंश को प्रतिष्ठित किया था।

वायु पुराण में राजा सगर से वशिष्ठ द्वारा खसों की रक्षा का वर्णन आया है। महाभारत द्रोणपर्व में भी खसों का उल्लेख है। खस जाति आर्यों के आने से पूर्व सुसंस्कृत हो चुकी थी। अब तक इनकी कई शाखाएं पंजाब, सिंधु, राजस्थान, महाराष्ट्र व नर्वदा के तट तक फैल चुकी थी। मलारी की समाधियों से उस काल की खस सभ्यता का प्रचुर ज्ञान होता है।

राजस्थान के ऐतिहासिक वृतांत में खस जाति को ३६ राजकुलों की श्रेणी में स्थान दिया गया है।

आगे चलकर यह खसजाति दो भागों में बंट गई थी। (१) ब्राह्मण (भट्ट), (२) क्षतिय। कुछ खस वैराग्य धारण कर हिमालय में तपस्या करते थे। शकुन्तला, उषा जैसी प्रसिद्ध सुन्दरियाँ खस जाति की ही बलिकायें थीं। पहले ये मातृकुल परक होते थे। बाद में पितृकुली हो गये, यानि कि ये बाद में लड़की को व्याह कर लड़का अपने घर लाता था। बहुत से इतिहासकारों का मानना है कि इन्हीं खस वंश के किसी शाखा के राज्य–उत्तराधिकारी कत्यूरी राजा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से पहले उत्तरी सीमान्त प्रदेश में आयोत्तर जाति के प्रमाण महर्षि पांतकुली ने दिये हैं। उनका मानना है कि यह जाति शक थी, महर्षि पाषिनी भी ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी के आस पास इंसान से शक जाति का प्रवेश मानते थे। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में मौर्यवंश के अंतिम नरेश राजपाल को उत्तराखण्ड के शक नरेश शकादिव्य ने मार डाला था। कालान्तर में यह शक जाति भी खश जाति में विलीन हो गई। खश अपने को कुबेर का वंशज मानते हैं।

मलारी समाधियों से प्राप्त मृतिका–पात्रों से पता चलता है कि आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व तुर्की से लेकर काश्मीर, उत्तराखण्ड तक के मिट्टी पात्रों की निर्माण शैली एक जैसी थी। यह शैली शक खस जाति की थी ये लोग सूर्य उपासक थे।

कालसी (देहरादून) से प्राप्त अशोक के शिलालेखों से पता चलता है कि पर्वतीय क्षेत्रों में नागवंशी राजाओं की सीमायें निर्धारित थीं। अंग्रेज लेखक इवेट का भी मानना है कि नागवंशी सक शाखा का पर्वतीय क्षेत्र में राज्य था। इसका प्रमाण पाण्डुकेश्वर में शेषनाग, रतलामगाँव, में भेकलनाग जालौर में संगल्यानाग, मुरगांव में वनपानाग, जेलम में लोहेन्दु नाग, नागनाथ में पुष्करनाग, दसौली में तक्षत नाग। इन नागों की आज भी पूजा होती है। पाण्डव काल में ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी तक इनका राज्य रहा।

महाभारत काल में श्री कृष्ण अर्जुन द्वारा खाण्डववन से नागों को हराने का वर्णन आया है। जन्मेजय के यज्ञ के बाद नागवंश का लगभग अन्त हो गया। पाण्डवों का उत्तराखण्ड से विशेष लगाव रहा है। आज भी उनके नाम से पाण्डुकेश्वर, पाण्डुबुगरी, पाण्डुखोली, पाण्डुखाल, भीमताल आदि स्थान अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के गवाह हैं।

दक्षिण भारत से अनेक राजपूत जातियां, युद्धों में हारे राजपरिवार समय–समय पर पहाड़ों के शरणांगत होती रही और नेपाल से लेकर कश्मीर तक फैलती गई। इसी क्रम में चौथी सदी में गुप्त वंश का राज्य रहा। छठी सदी के आस–पास मौर्य वंश का राज्य रहा। छठी से १५वीं सदी तक कत्यूरी वंश का राज्य और मध्य में चन्दों का शासन भी रहा।

बौद्ध काल में चीन यात्री ह्वेनसांग ने कुमाँऊ में गोमिस्तण नाम का एक सुन्दर नगर का वर्णन किया है। ऐटकिनसन में इसे वर्तमान काशीपुर माना है।

बौद्धधर्म रामगंगा के किनारे वाली उपत्यकाओं से पहाड़ों में फैला था भिक्यासैण किसी भिक्षु की (बौद्ध की) स्मृति में बसाया गया था। कत्यूरी काल में भिक्कू चाल (भिक्षुओं का षडयंत्र) का उल्लेख आया है। प्रारंभ में कत्यूरी नरेशों ने बौद्ध धर्म अपनाया था, परन्तु बाद में वे भी शैव धर्मी हो गये।

आठवीं सदी में जगत्गुरु शंकराचार्य के प्रार्दुभाव के बाद ज्योर्तिपीठ, जोशीमठ में स्थापित होने से शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त से बहुत से बौद्ध तिब्बत भाग गये। जो यहां रह गये उन्होंने वैदिक धर्म स्वीकार कर लिया था। कत्यूरी नरेशों के पाण्डुकेश्वर से प्राप्त ताम्रपत्रों में मिल्ल, किरात, खश, हूण, द्रविण, गौड़, आन्ध्र आदि अठारह प्रजाजनों व भगवान श्री नारायण महारक को सम्पूर्ण अधिकार दिये जाने का उल्लेख है।

इससे सिद्ध होता है कि तत्कालीन कत्यूरी राजाओं ने प्रजा सहित वैदिक धर्म अपना लिया था। वैदिक धर्म अपनाने पर कत्यूरी नरेशों ने अपने नामान्त में उपाधि स्वरूप परम् भागवत–परम महारक, परम महेश्वर, परम वैष्णव, लगाना प्रारंभ कर दिया।

इस प्रकार प्रागेतिहासिक काल से पन्द्रहवीं सदी तक मानव इतिहास के क्रमिक विकास से यह सिद्ध होता है कि उत्तराखण्ड प्रारंभ से ही जन चेतना का केन्द्र तो रहा ही साथ ही मानवीय सभ्यता के विकास में पीढ़ी दर पीढ़ी अहम् भूमिका निभाता रहा, और यही चेतना क्षेत्र भारत को जगतगुरु का दर्जा दिला गया। उत्तराखण्ड के अतीत का जो गौरवशाली–आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, व धार्मिक स्वरूप रहा, यदि इस इतिहास की बिखरी कड़ियों को जोड़कर भारत के इतिहास में नहीं जोड़ा गया तो इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ अधूरा ही रह जायेगा। इस चुनौती को इतिहासकारों को स्वीकारना होगा। इस दिशा में गहन शोध होना चाहिए।

युग परिवर्तन व सत्तापरिर्वतन के साथ–साथ इस भू–भाग के नामों में भी परिर्वतन होता गया, वैदिक काल से पहले इस समूचे क्षेत्र को हिमवंत

नाम से जाना जाता था। वैदिक काल में मेरुप्रांत, आर्याव्रत, अर्थवेद, के समय यामून प्रदेश, उत्तर वैदिक काल में उसीनर, रामायण काल में उत्तर कौशल, महाभारत के समय पंचाल देश कहीं–कहीं उत्तराखण्ड या उत्तरकुरु नाम आया है। मनुस्मृति में ब्रह्मर्वत, इलावर्त का उल्लेख है। मध्य काल में सपादलक्ष, वाराही संहिता में खस देश, पुराण काल में केदारखण्ड–मानसखण्ड नाम से जाना जाता था। अशोक के समय शत्रुघन प्रान्त, अमब्ररीस के समय युगशैल, गुप्तकाल में कृतपुर, चीनी यात्री फाह्यान ने ब्रहमपुर, कत्यूर काल में कार्तिकेयपुर यां क्रांचलप्रदेश, चन्द राजाओं ने कुर्मांचल, अंग्रेजों ने प्रशासनिक सुविधा के लिए कुमाँऊ एवं गढ़वाल नाम दिया तथा वर्तमान में उत्तराखण्ड नाम है।

कुछ प्रमुख ऐतिहासिक तिथियाँ

तिथि क्रम – यद्यपि प्राचीन इतिहास की प्रमुख घटनाक्रमों की तिथियों में विद्वानों में एक मत नहीं है। कुछ विद्वानों ने कुछ ऐतिहासिक काल गणना निम्न प्रकार से की है।

(१) रोम सागरीय द्रविण जाति का आगमन– ५ हजार वर्ष पूर्व, – (आर: सी. मजूमदार)
(२) सिन्धु घाटी सभ्यता– वि० पूर्व–३२००.२६०० – (आर के मुर्खजी)
(३) आर्य जाति का आगमन–२००० ई० पूर्व से १५०० ई० पूर्व – (आर सी मजूमदार)
(४) ऋगवेद का काल–२५०० ई० पूर्व -- (राहुल सांस्कृत्यायन)
(५) महाभारत युद्ध काल–वि० पू० १३५०–६५० (राहुल सांस्कृत्यायन)
(६) परीक्षित–ई० पू० ६५० – (मजूमदार)
(७) जन्मेजय – ई० पू० आठवीं सदी – (राधा मुकुन्द मुर्खजी)
(८) महावीर वर्धमान जन्म–चैत्र शुक्ला त्रियोदशी ई० पू० ५४२
(९) ५६३ – ई० पू० महात्मा बुद्ध का जन्म
(१०) ५४४ – ई० पू० मगध साम्राज्य की स्थापना
(११) ३६४ – " " नंदवंश की स्थापना
(१२) ३२२ – " " मौर्यवंश की स्थापना
(१३) २६६ – " " अशोक शासक बना
(१४) ७८ – ई० शक सम्वत् प्रारम्भ
(१५) २८४ – ई० कलच्यूरी राज्य की स्थापना
(१६) २७५ – ई० गुप्तवंश की स्थापना
(१७) ४०५ – ई० फाहइयान की भारत यात्रा
(१८) ६०३ " ह्वेनसांग की भारत यात्रा
(१९) १००१ " मौहमद्द गौरी का आक्रमण
(२०) १४४० " कबीर का जन्मकाल
(२१) १४८८ " कत्यूरों का लखनपुर त्याग
(२२) गोरखा शासन सन् १७६० से १८१५ तक
(२३) अंग्रेज शासन सन् १८१५ से १९४७ तक – भारत आजाद १९४७
(२४) लखनपुर जीर्णोद्धार प्रारम्भ सन् १९८८

कत्यूरी वंश का प्रार्दुभाव

कत्यूरों को उत्तराखण्ड के बहुत बड़े भूभाग में ईष्ट देवता, नौलाकन्थापुरी, भूमिया देवता, कैत्यूरा देवता, ग्राम देवता, जैजिया आदि रूप में बड़ी श्रद्धा निष्ठा के साथ याद किया जाता है पूजा जाता है। राम व कृष्ण के बाद किसी नरेश को देवता मानकर पूजा गया तो वे सिर्फ कत्यूरी राजकुल के नरेश थे।

कौन हैं ये कत्यूर, उनके सम्बन्ध में तार्किक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना, अनेक भ्रान्तियों, किभदन्तियों, लोकमान्यताओं की बिखरी कड़ियों को एकत्रित करते हुए कत्यूर युग की सांस्कृतिक धार्मिक, सामाजिक व्यवस्थाओं को इतिहासकारों ने किस रूप में देखा है उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत कर, आने वाली पीढ़ियों के लिए ऐसे चरित्रवान परोपकारी (जो अपने सतकर्मों के कारण लोक देवता बनकर पूजा के अधिकारी बने, तथा गांव–गांव घर–घर पूजे जाते हैं) कत्यूरों के बारे में जो जानकारी विविध श्रोतों से मिल सकी हैं अगले पृष्ठों पर प्रस्तुत है।

महान विद्धान पं० राहुल सांस्कृत्यान ने लिखा है– उत्तराखण्ड के हिम प्रान्तों में ई० पू० ५वीं सदी के आसपास कुन्दिों का राज्य था उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी कठेर हुए, कठैरों के बाद पोरव इस क्षेत्र के शासक बने। इनके बाद इन सम्पूर्ण क्षेत्र मे प्रथम राजवंश कत्यूरी वंश का राज्य दीर्घ काल तक रहा।

कत्यूरीयों को सूर्यवंशी राजा उत्तानपाद (ध्रुव के पिता) का वंशज माना जाता है। ध्रुव द्वारा जोशीमठ में भगवान विष्णु की अराधना करना उनको नरसिंह रूप में दर्शन देना, नरसिंह का जोशीमठ में मन्दिर, कत्यूरों की प्रथम राजधानी जोशीमठ बनाना अपने प्रथम नरेश वासुदेव का जोशीमठ में मन्दिर बनाना इस वंश परम्परागत निकटता को प्रमाणित करता है। भागवत पुराण में नरसिंह अवतार की विस्तृत चर्चा की गयी है।

कत्यूरी नरेश ललित सूरदेव के ताम्रपत्र (कार्तिकेयपुर से जारी) में कुशली शब्द आया है जो कौशल का अपभ्रष्ट या अविकसित जान पड़ता

है। राज्य विस्तार की कामना से उत्तराखण्ड की तरफ आये अयोध्या के किन्हीं कौशल नरेश ने यहां के मूल निवासी कुणिन्द, पौरव, खश, दरद शक, हूण आदि जातियों के स्थानीय शासकों को जीतकर यहां अपना अधिकार कर लिया था। इन्हीं कौशल नरेश की एक शाखा स्वतंत्र रूप से यहां राज्य करने लगी। यही अवध (कौशल) से आया राज्यपरिवार कत्यूरी वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। **(पं० बद्रीदत पाण्डे कु० ई०)**

संस्कृत के महान विद्वान आचार्य अखिलानंद का मत है कि कार्तिकेयपुर का ताम्रपत्र का "कुमली" शब्द कत्यूरियों को रामचन्द्र का वंशज मानकर उनका सूर्यवंशी होना प्रमाणित करता है। उनका यह भी मत है कि कत्यूरी नरेशों ने कबीरपुर, कार्तिकेयपुर में २२६ पुस्तों तक धर्मराज्य किया था।

मुस्लिम प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ (जमीऊत तारीख) में लिखा है कि जिस समय अरब देशों से इस्लाम धर्म पूर्व की ओर बढ़ रहा था उस समय कठेर (कत्यूर) राज्य काबुल से नेपाल तक फैला था राजा वासुदेव ने अपने पुत्र राजकुमार कनक की यवनों के आक्रमण को रोकने के लिए भेजा। काबुल के भयंकर युद्ध में कनक मारे गये कठेर नरेश वासुदेव वहां से सुरक्षित स्थान जोशीमठ में आकर अपनी राजधानी बनाकर राज्य करने लगे। कत्यूरी प्रथम नरेश वासुदेव के नाम से मन्दिर पर वासुदेव चक्रचूणामणि खुदा है। मन्दिर आज भी जोशीमठ में नरसिंह मन्दिर के निकट है। कई इतिहासकार कत्यूरों को कठेर या कठोर वंश का होना मानते हैं।

उनका मत है कि अफगानिस्तान के सीमा प्रान्त के चित्रास और यसतूर के शासक वर्तमान में भी कढेर जाति के हैं कटार मल के सूर्य मन्दिर शब्द साम्य सूर्य पूजक आदि हैं लगता है कढेर व कत्यूरी अवश्य ही एक हो सकते हैं। (एकटिन्सन)

असकोट के रजवारों की वंशावलियों से विदित होता है कि असकोट पहुंचने से पूर्व कत्यूरी राजाओं की ५० पीढ़ियां पूर्व में राज्य कर चुकी थी। कार्तिकेयपुर में कत्यूरों का आगमन ७वीं से ६वीं सदी के लगभग माना जाता है इसके माने हुए ईसा की कुछ सदियों बाद कत्यूरी राज्य की स्थापना हो चुकी थी।

समुद्र गुप्त (३३५–३७५ ई०) का राज्य विस्तार बंगाल, दबाक, आसाम, नेपाल, कृतपुर (कार्तिकेयपुर) पंजाब, मालदा, बुन्देलखण्ड, नागपुर आदि प्रान्तों में फैल चुका था। इन प्रान्तों को समुद्र गुप्त की अधीनता स्वीकारते हुए शासन चलाने की स्वतन्त्रता उनको मिली हुई थी। समुद्र गुप्त के प्रयाग वाले शिलालेख में कृतपुर का उल्लेख आया है इसमें कत्यूरी नरेशों की ग्राम देवता के रूप में पूजा होने के भी उल्लेख आये हैं।

एशियांटिक जनरल १८१४ ई० में सप्रमाण सिद्ध किया है कि कृतपुर (कार्तिकेयपुर) वर्तमान कत्यूर बैजनाथ ही है उस समय उनका राज्य पूर्व में गण्डकी नदी, पश्चिम में सतलज, उत्तर में हूणदेश तथा दक्षिण में रूहेलखण्ड तक फैला था इससे सिद्ध होता है कत्यूरी शासन चौथी सदी में अस्तिदत में आ गया था।

अंग्रेज इतिहासकार एटकिन्सन अपने शोध ग्रन्थ में लिखते हैं कि ६३०–६४० में कत्यूरी राज्य की सीमा उत्तर में तिब्बत–कैलाश पश्चिम में सतलज, पूर्व में गण्डकी दक्षिण में कढेर (रूहेलखण्ड) तक थी उनकी राष्टभाषा संस्कृत थी उनके मूल पुरुष सूर्यवंशी अयोध्या के राजाओं के वंशज शालीवाहनदेव यहां आकर बसे थे।

काश्मीर में कत्यूरी राजाओं के जागर गीतों तथा पाण्डूकेश्वर में रखे ताम्रलेखों में अदभूत सामंजस्य सिद्ध करता है कि समस्त उत्तर भारत में कत्यूरियों का वैभवशाली साम्राज्य रहा। फरिस्ता नामक फारसी इतिहासकार ने लिखा है कि कुमाँऊ के राजा पुरु ने दिल्ली के बादशाह हितम्ल को हराया था।

सातवीं सदी में चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से ज्ञात होता है कि कत्यूरी राजा वासुदेव बौद्धधर्म त्यागकर वैदिक धर्मी बन गये थे; इसलिए उन्होंने बहुत से वैदिक मन्दिर बनवाये थे। उनकी राजधानी ब्रहमपुर बैराठ पट्टभ माना है।

यदि कत्यूर शब्द को कार्तिकेयपुर का अपभ्रंश माना जाए तो कुशाण शासकों के साथ इनका सम्बन्ध ठहरता है क्योंकि कुणालों के सिक्कों व ध्वंजों पर स्वामी कार्तिकेय की मूर्ति बनी है और कत्यूरों की राजधानी का

नाम कार्तिकेयपुर था इससे सिद्ध होता है कि या तो कुषाणों को हराकर कत्यूरी राज्य की स्थापना हुई होगी या वे स्वयं उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी बन गये हों।

बाद में उनकी राजधानी जोशीमठ फिर गोमती उपत्यका बैजनाथ व लखनपुर में बदली।

(रा० सांस्कृत्यायन)

कन्नौज के पालवंशीय राजाओं की उत्तर सीमा कठेर राज्य व गिलगित से मिलती थी यहीं अरब व भोट राज्य की सीमायें मिलती थी यहां पिछली दो शताब्दियों से पर्वतीय क्षेत्रों में बौद्धों का शासन था बौद्धों के अत्याचार पक्षपात पूर्ण शासन प्रणाली तथा तिब्बत दूरस्थ राजधानी होने से उनकी पकड़ इस पर्वतीय क्षेत्रों में ढीली होती गयी। आम प्रजा उनसे मुक्ति चाहती थी इसका लाभ उठाकर राजा भोज व मगध के प्रतिहारों ने मिलकर इस क्षेत्र से बौद्ध को हटाकर अपने मित्र कत्यूरों को राज्य सौंप दिया।

(भोज ताम्रपत्र में इसका वर्णन है)

मध्य भारत के प्राचीन इतिहास ग्रन्थों में मालवा के परमार, बंगाल के पाल, पंजाब के साही तथा उत्तराखण्ड के कत्यूरी राजपूत नरेशों के वैभवपूर्ण राज्यों का वृहद वर्णन आया है।

पुरातत्व वेता डा० काशी प्रसाद जयसवाल, डा० मिरासी, ही० ए० स्मिथ, सी० जी० बाउन तथा डा० भन्डारकर के संयुक्त ऐतिहासिक अध्ययन ने सिद्ध किया है कि कत्यूरी नरेश बड़े शक्तिशाली थे उनकी राजा भोज से मित्रता थी। इनका मानना है कि सन् ५५० से १६४० तक कत्यूरियों का देश के किसी न किसी भाग में शासन रहा कत्यूरियों ने ११६० वर्ष राज्य किया।

डोटी व अस्कोट की कत्यूरी वंशावलियों में शालीवाहन को मूल पुरुष माना गया है इनका मानना है कि शालीवाहन सम्वतः उन्हीं की स्मृति में प्रारम्भ किया गया है। यह तथ्य अपने में विचारणीय है कि जहां समूचे भारत में विक्रम–सम्वत् चलता है वहीं पूरे उत्तराखण्ड में शक सम्वत् सम्बन्धी और पंचाग से गणना होती है।

कत्यूरियों का शक से सम्बन्धित होना इस परम्परा से प्रमाणित होता है कि वे बूटधारी सूर्य के उपासक थे आगे चलकर अपनी इसी वंश परम्परा को जारी रखते हुए कत्यूरी नरेशों ने कटारमल, गोपेश्वर, बैजनाथ, बागेश्वर, द्वाराहाट आदि स्थानों में सूर्य मन्दिर व सूर्य स्थापना कराई थी जो आज भी अधिकांश स्थानों में मौजूद हैं।

एक पौराणिक कथा के अनुसार सुगवंश के दस राजाओं ने १२० वर्ष तक राज्य किया था। कण्ववंश के वासुदेव ने उनके अन्तिम राजा देवभूमि को मारकर ४५ वर्ष तक राज्य किया। शालीवाहन इसी वंश में हुए यहीं वंश आगे चलकर कण्व से कत्यूरी कहलाया।

ऐटकिन्सन के अनुसार शंकराचार्य अपनी दिग्विजय यात्रा के समय कत्यूरी राज्य से होकर ७१५–७२० ई० में बद्रीनाथ तक गये थे।

इतिहासकार श्री बद्रीदत पाण्डे जी का मानना है कि ईसा पूर्व छिन्न–भिन्न सामाजिक व्यवस्था को एक छत्र, एक श्रृंखला तथा एक शासक के अर्न्तगत लाकर कत्यूरियों ने धर्मराज्य की स्थापना की थी।

डा० रणवीर सिंह चौहान प्रवक्ता इतिहास गढ़वाल विश्व–विद्यालय अपने शोध ग्रन्थ में लिखते हैं कि कत्यूरी राजवंश ने सातवीं से दसवीं सदी तक जोशीमठ तथा दसवीं से पन्द्रहवीं सदी तक लखनपुर को अपनी राजधानी मानकर तिब्बत से पीलीभीत तक भोट से अलकनन्दा तक सलाण से डोणधारी तक राज्य किया था।

कलचुरी वंश का उदय नर्मदा तथा गोदावरी मध्य क्षेत्र में दूसरी तिसरी शताब्दी में हुआ था। इनहैह्यवंशीय क्षत्रीयों की राजधानी जबलपुर के निकट थी इस राजवंश में लक्ष्मणराज सबसे प्रतापी राजा हुए। कई इतिहासकारों का मत है कि कलचुरी का विकसित नाम कत्यूरी है।

डा० प्रयागदत्त जोशी लिखते हैं कि उत्तराखण्ड की प्राचीन प्रेरणागाथाओं के रूप में जिस इतिहास का दिग्दर्शन होता है वह है कत्यूरी राजवंश उनका मत है कि पुराना कृतपुर जोशीमठ के समीप तपोवन के आस पास स्थित था। टैकलपुर और कार्तिकेयपुर इनको दो प्रसिद्ध नगर

रहे होंगे। इन दोनों स्थानों से जारी चारों ताम्रपत्र इस राजवंश के शुद्ध ऐतिहासिक दस्तावेज हैं इनमें दो ताम्रपत्र ललित सूरदेव के हैं एक पट्टमदेव का और एक सुभिक्षराज का है इन्हीं ताम्रपत्रों की शैली में एक शिलालेख बागेश्वर में ललितसूर देव के पुत्र भूदेव का लिखा है। शंकर व पार्वती में विशेष श्रद्धा के फलस्वरूप उनके पुत्र कार्तिकेय के नाम से कार्तिकेय के नाम से कार्तिकेयपुर उन्होंने अपनी राजधानी का नाम रखा होगा जो कत्यूर घाटी में है।

चौथी से छटी शताब्दी तक इतिहास में कम उलटफेर का युग था परन्तु सातवीं सदी में ऐतिहासिक, राजनैतिक व धार्मिक उलट–फेर प्रारम्भ हो गयी। उन दिनों ६६७ ई० के लगभग हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरान्त उनके एक मंत्री अर्जुन ने राज्य का अधिकारी बनने के लालच में एक चीनी राज प्रतिनिधि मण्डल जो भारत की यात्रा पर आया था, लूट कर उसकी हत्या कर दी इस समाचार से तिब्बती राजा सांगचमेगमयो आगबबूला होकर एक विशाल सेना लेकर शान्त सीमा प्रान्त पर आ धमका इस अप्रत्याशित आक्रमण से हजारों निरपराध हिन्दू मारे गये कई गांव उजाड़ हो गये और उत्तरी सीमा प्रान्त का मानसरोवर क्षेत्र तिब्बतियों के कब्जे में चला गया इससे प्रोत्साहित होकर चीन के हजारों बौद्ध हमारे धर्मस्थलों में प्रवेश कर धर्मपरिवर्तन में लग गये। इससे तपोवन के आसपास जो सीधे तिब्बत के सम्पर्क में था, में अशान्ति बढ़ने लगी। किसी बड़ी उथल–पुथल से बचने के लिए संभवतः कत्यूरी नरेशों को वहां अपनी राजधानी बैजनाथ वाले कार्तिकेयपुर (गरुड़) में बदलने के लिए विवश होना पड़ा।

यहां राजधानी बनाने के बाद कत्यूरी साम्राज्य कार्तिकेयपुर, लखनपुर, द्वाराहाट, अस्कोट, डोटी क्षेत्र में बंट गया।

गुप्त साम्राज्य के पतन (७२० ई०) के साथ ही अन्य प्रान्तों की तरह कृतपुर भी स्वतन्त्र राज्य बन गया। यह वह समय था जब भारत एक नये युग में प्रवेश कर रहा था। धातु शोधन, विज्ञान, देहली का लोह स्तम्भ, आर्यभट्ट, बाराहामिहर जैसे ज्योतिषाचार्य का प्रार्दुभाव याज्ञबल्यक, नारद विष्णु पुराणों की रचना, कुमारसम्भव, रघुवंश, महाकाव्य, मेघदूत पंचतन्त्र की कहानियां सब इसी युग की देन हैं।

आठवी सदी के आते–आते स्वामी शंकराचार्य ११ वर्ष की उम्र में कत्यूरी राज्य से होकर तप साधना के लिए पांच वर्षों तक बद्री आश्रम में रहे वहीं उन्होंने वेद भाव्यों की संरचना की थी। शंकराचार्य धर्म दिग्विजय के उपरान्त बौद्ध धर्म का ह्रास होता चला गया। दसवीं सदी के आते आते जो कत्यूरी साम्राज्य का स्वर्णयुग था धर्मपीठ, जोशीमठ, राष्ट्रव्यापी संस्कृत, वांग्मय ज्योतिष, योग, आर्युवेद, राजनीति, इतिहास तथा पुराणों का अध्ययन केन्द्र बन चुका था।

फरिस्ता, कनिधम, ऐटकिन्सन, कोरिगम, बद्रीदत्त पाण्डे, डा० प्रंयाग जोशी आदि शोधकर्ताओं का मत है कि कत्यूरी राज्य सिक्किम से काबुल तथा मानसरोवर से रुहेलखण्ड तक था।

चक्रचूणामणि, परमवैसनव, परमशैव, परम भट्टारक सम्राट इस वंश में हुए हैं। उनके राज्य में बलिदान पर प्रतिबन्ध था परदा प्रथा नहीं थी अलबत्ता सती प्रथा जारी थी।

पं० रामदत्त त्रिपाठी लिखते हैं कि वि० सं० १३० वर्ष पूर्व (धर्मराज सम्वत् के अनुसर २६१४) में बैधनाथ में रणाचूलीहाट तत्कालीन राजा रणधीर के साथ नरसिंह देव के आदेशानुसार आसन्त देव के पुत्र बासन्तिदेव का मल्लयुद्ध हुआ जिसमें रणधीर सिंह हार गये। उनके राज्य पर बासन्तदेव का अधिकार हो गया। उन्होंने ७५ वर्ष तक धर्मराज किया। इनके पुत्र सुखवन्त का देहली नरेश राजपाल से युद्ध हुआ था। सुखवन्त की रानी सुभद्रा देवी ने वृद्ध भुवनेश्वर का मन्दिर बनवाया था। बैजनाथ (कत्यूर) के संग्रहालय में दो शिलालेख हैं एक से महाराजाधिराज परम महारक लखनपालदेव के भूदान तथा दूसरे में बैजनाथ कार्तिकेयपुर का उल्लेख है।

तपोवन, धौली नदी के बायीं तरफ जोशीमठ से ६ मील उत्तर में है जहां कई तप्त कुण्ड और प्राचीन मन्दिर हैं। सम्भवतः कत्यूरी राजाओं का बद्री आश्रय यहीं हो क्योंकि उन दिनों वर्तमान बद्रीआश्रम पर बोद्धों का कब्जा था। ६वीं–१०वीं शताब्दी के ताम्रपत्रों में कत्यूरीयों द्वारा तपोवन बद्रीनाथ की स्तुति लिखी हैं।

राहुल सांस्कृत्यायन

बृहद जाति भास्कर पुस्तक में ज्वाला प्रसाद मिश्र लिखते हैं कि पूर्वकाल में खश जातियों को जीतकर कत्यूरी राज्य की स्थापना हुई थी।

कत्यूरी वंशावली

उत्तराखण्ड पर ई० पू० तीसरी सदी से १५वीं सदी तक शासन करने वाले राजवंशों में मौर्यवंशी अशोक और उसके वंशज सगुवंशी पुण्यमित्र गोविषाण के मित्र वंशी, युगशैल के अश्वमेघकर्ता लाखामण्डल के जयदास, कृतपुर के खशाधिपति, कान्यकुब्ज का सर्ववर्मन गुप्त वंश के समुद्रगुप्त और वंशज, गोपेश्वर बड़हाट के नागवंशी सैहपुर के यादव, देवप्रयाग के वर्मन और वर्द्धन, पर्वतासार के सोम सूर्यवंशी पौरव, कुणिन्द, कार्तिकेयपुर के कत्यूरी, कामादेश का सिंह परिवार, चम्पावत के चन्द तथा वैतड भरत डोटी के आक्रान्ता अशोकचल व कात्राचल आदि थे।

इतिहासकारों में कत्यूरी शासन के प्रारम्भ होने राज्यविस्तार व राज्याविधि के बारे में मतभेद है तब भी सभी शोधकर्ता इस मत से सहमत हैं कि पूर्वकाल में कत्यूरी शासन सिक्किम से काबुल तक फैला था। वह प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्वर्णिम युग था।

ऐटकिन्सन, बद्रीदत पाण्डेय, राहुल सांस्कृत्यायन सरीखे इतिहासविदों का मानना है कि कत्यूरी राज्य के मूल संस्थापक शालिवाहनदेब थे, परन्तु कुछ विद्धानों का मत है कि इस वंश के प्रथम नरेश वासुदेव थे। उनकी राजधानी जोशीमठ थी। वहीं नरसिंह मन्दिर (अपने ईष्ट देवता) के निकट वासुदेव का मन्दिर.बनाहै अन्दर मानवाकारवासुदेव की भव्यमूर्ति श्याम पाषाण से बनी है वासुदेव विष्णु भगवान का नाम भी है इसलिए विष्णु मूर्ति भी हो सकती है।

मन्दिर के भीतर पाषाण शिला पर "वासुदेवगिरीराज चन्द्र चूणामणि" खुदा हुआ है। इस लेख से प्रमाणित होता है मूर्ति और मन्दिर के निर्माता वासुदेव ही थे।

मूर्ति विग्रह का फोटो खिंचने का सौभाग्य मुझे भी मिला। राहुल सांसकृत्यायन ने तथ्यों के आधार पर प्रमाणित किया है कि जनहितकारी उत्कृष्ठ कार्यों के सम्पादन के कारण अपने जीवनकाल में ही कत्यूरी नरेशों की पूजा प्रतिष्ठा होने लगी थी जो आज तक पूर्ववत प्रचलित है।

यहीं से कत्यूरी वंशावली आगे बढ़ती है। सम्राट वासुदेव के पुत्र कनक देव काबुल युद्ध में मारे गये थे, उनके पुत्र बसन्तदेव इनके वशंज खपरदेव, कल्याण देव, त्रिभुवनराज, निर्मलादेव, इरातारणदेव, ललितपुरदेव, भूदेवदेव, सलौनदित्यदेव, इच्छण्देव दोसटदेव, थइटदेव, सुरभिक्षराजदेव, देवपालदेव, ये सोलह नरेश गिरीराज चक्रचूणामणि विरद धारी सम्राट हुए। इनके बाद संजय देव, कुमार देव, हरिश्यदेव, ब्रह्मदेव, शंखदेव, वग्रदेव, वृजम्यदेव, विजयपालदेव से लेकर गणपतिदेव, जयादेव आदि पचास पुस्तों के जोशीमठ के पास तपोवन के समीप राजधानी बनाकर राज्य करने के प्रमाण मिलते हैं।

जोशीमठ से कत्यूरी राजधानी बैजनाथ (गरुड़) के कार्तिकेयपुर में सातवीं ईसवी के आसपास स्थानान्तरित की गयी। राजधानी परिवर्तन का निर्णय नरसिंह भगवान के आदेशानुसार कुछ विद्धान मानते हैं लेकिन कुछ इतिहासकारों का मानना है कि, बौद्धों के प्रभाव से तिब्बत नजदीक होने से राजधानी असुरक्षित हो चली थी कुछ मतों के अनुसार गढ़मण्डल में कत्यूरी प्रभाव कम होना या प्राकृतिक कारणों जैसे राजधानी का एकदम किनारे अत्यन्त ठण्डे प्रदेश में हिमानी भूखण्डों के मध्य होना या अन्य राजनैतिक कारणों को मध्योत्तर रखकर राज्य के हित में परिवर्तन किया गया जोशीमठ से कार्तिकेयपुर बैजनाथ गरुड़ में राजधानी का भव्य निर्माण किया गया। कार्तिकेयपुर राजधानी की वंशावली में नरसिंह देव (जयदेव) अनिलदेव, विधाराजदेव, पृथ्वीश्वर गुनपालदेव, आसन्तिदेव, बासन्तिदेव, कटारमलदेव (आठवीं पीढ़ी में) इन्होंने कटारमल सूर्य मन्दिर १०८०–११०० ई० में बनाया था। सिंहचलदेव से नीलरायदेव तक ३६ नरेशों के राज्य करने का उल्लेख है इनमें वासनदेव, बसन्तदेव, अन्नपालदेव, साधुवादेव इन्द्रदेव, विजयपालदेव, महिपालदेव, लक्ष्मणपालदेव (१२१५ ई० में) चन्द्रदेव धामदेव, ब्रहमदेव आदि थे।

केन्द्रीयसत्ता के कमजोर होने के कारण गढमण्डल के मण्डलीय राजाओं ने राज्यकर देना बंद कर दिया और जहां तहां अपने को स्वतन्त्र राजा घोषित करना प्रारम्भ कर दिया।

इस प्रकार वृहद कत्यूरी राज्य कार्तिकेयपुर सुई, पाली, द्वाराहाट, अस्कोट, डोटी व वारामण्डल छैः शखाओं में बंटकर स्वतंत्र राज्य बन गये आसन्तिदेव पाली मण्डल के संस्थापक हुए उनकी राजधानी लखनपुर थी।

निरंजनदेव डोटी शाखा के संस्थापक हुए (१२७५ ई० में) अन्नपालदेव अस्कोट शाखा के (१२७१ में) संस्थापक हुए बेहलदेव सूईशाखा के प्रथम राजा हुए और १२७५ ई० में द्वाराहाट शाखा के राजा गुजरदेव हुए।

अस्कोट के ७७ मण्डलीय रजवारों की सूची प्राप्य है इनमें शालिवाहन देव के पुष्कर पालदेव १८८० में उल्लेखित हैं। मण्डलीय राजा होने के कारण रजवार कहलाये इनके नामान्त में पाल लिखा जाता रहा रजवारों के बड़े लड़कों को लाला छोटे को गुसाँई कहा जाता है।

डोटीशाखा के संस्थापक निरंजनदेव हुए ५३ राजाओं की नामावली इस वंश में मिलती है।

राज परिवार वाले अपने नामान्त में मल्ल लिखते हैं।

द्वाराहाट के गुजरदेव १२५० में हुए इस वंश के गुजरदेव, अर्जुनदेव, सुधारदेव, मानदेव, सोमदेव, रामचन्द्रदेव, लिंगराजदेव, हमीरदेव, निरभयपालदेव, विरदेव १२ राजा थे।

संभवतः विरमदेव ने अपने शासन काल में यहां अपना अधिकार कर लिया हो इसलिए इस वंश के अन्य राजाओं के नामों व वंशजों का उल्लेख आगे चलकर नहीं मिलता है।

लखनपुर – कत्यूरी वंश की एक शाखा लखनपुर में आकर राज्य करने लगी। चूंकि लखनपुर पहले से ही उपराजधानी थी यह उपमुख्यालय जोशीमठ की राजधानी के समय भी कार्यरत था यहां से तराई–भावर तथा डोटी तक (केन्द्र में होने से) नियंत्रण रखा जाता था यहां के राजवंशावलियों में अशान्ति देव, बासन्तिदेव, गौरोगदेव, श्यामलदेव, केण्वराई, केशवराई अजबराई, गजबराई के दो पुत्र हुए। सुजानदेव, प्रीतमदेव। प्रीतमदेव पृथ्वीपालदेव के रानीजीया से धामदेव तथा दूसरी रानी धरमादेवी से मालूसाई हुए, सूजानदेव के सारंगदेव, सारंगदेव के दो पुत्र (१३४० में सारंगदेव ने टमाढोन में कुल देवी का मन्दिर बनाया) विरमदेव व वागदेव हुए, जो सैणमानुरा (मानिला) में किला बनाकर रहने लगे थें इस प्रकार पाली शाखा के १४ राजाओं का उल्लेख आया है।

राज्य छीन जाने पर नामान्त में गुसाई बाद में सिंह लिखने लगे। उनके वंशज रजवार व मनराल वर्तमान में भी हैं। इस प्रकार १४वीं सदी के अन्ततक विशाल कत्यूरी साम्राज्य डोटी, अस्कोट, बैजनाथ, लखनपुर वैराठ की शाखाओं में मण्डलीय राजाओं तक सिमट कर रह गया और १५वीं सदी में इतिहास का वह स्वर्णिम पन्ना इतिहास बनकर अतीत में समर्पित हो गया।

कत्यूरों के सम्बन्ध में कई विश्वविद्यालयों में इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए कि उत्तरांचल में कत्यूरी राजवंश एक ऐसा राज्य था, जो अपने युग में स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता रहा है। जिसने यहां की राजनीतिक, धर्म और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है। जिनके अवशेष वर्तमान तक मौजूद हैं। कुमाऊं विश्वविद्यालय में इन्हीं विन्दुओं के परिपेक्ष में कत्यूरों पर एक विषय पिछले कई वर्षों से प्रारम्भ किया है।

कत्यूरों से सम्बधित कई विषयों में अब तक कई विद्वान (पी०एच०डी०) कर चुके हैं। अभी भविष्य में कत्यूरों के बारे में उच्च अध्ययन एवं शोध की नित्यान्त आवश्यकता है।

कत्यूर काल की धर्मव्यवस्था

धर्म (नीति) के बिना राजतंत्र (प्रशासन) को सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकता है इसीलिए प्रारम्भ से ही कत्यूरी नरेशों ने धर्म को संविधान का रूप देकर उसको जीवन के प्रत्येक क्षेत्र–आहार–विहार, रहन–सहन, खान–पान, कर्म काण्ड, और राजनीति में प्रविष्ट करा दिया था। धार्मिक अनुशासन के कारण ही कत्यूरी राज्य इतिहास में सर्वाधिक अवधि तक स्वर्णयुग के रूप में संचालित रहा। आज भी उस युग को बड़े गर्व के साथ याद किया जाता है और कत्यूरों को देवता मानकर सुख शान्ति तथा समृद्धि की याचना करते हुए उनकी पूजा करते हैं।

प्रागैतिहासिक काल के बाद उत्तराखण्ड में किरात, किन्नर, नाग यज्ञ, गन्धर्व विद्याधर, कुणिन्द, तंगण, खस आदि प्रजातियों से परम्परागत पूजा विधियों का वैदिक काल की सांस्कृतिक के साथ एकाकारकर एक कत्यूरी धार्मिक सभ्यता का उदय हुआ। यद्यपि प्रारंभ में कत्यूरी नरेश बौद्ध मतावलम्बी थे, परन्तु युगधारा के अनुरूप शंकराचार्य के दिग्विजय अभियान से पूर्व ही उन्होंने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना करली थी।

उन दिनों शिव, विष्णु और नन्दा (पार्वती) की उपासना प्रमुख रूप से प्रचलित थी, फिर भी सूर्योपासना को विशेष महत्व कत्यूर काल में मिला। तालेश्वर ताम्र शासन (पांचवी, छटी सदी) में सूर्य की प्रशस्ति गायी गई है। कटारमल का आदित्य मन्दिर, विसुंग, रमक, गढ़सारी पिथौरागढ़ के सूर्य मन्दिर कत्यूरी नरेशों के सूर्योपासक के द्योतक हैं। यही अनुराग उनके सूर्यवंशी होना भी प्रमाणित करता है।

लल्लित सूर देव आदि नरेशों ने अपने ताम्र पत्रों में अपने पूर्वज सूर्यवंशी अज, दधीची, हरीशचन्द्र, राम आदि को सादर स्मरण कर उनसे शक्ति मांगी है।

मुद्राओं और अभिलेखानुसार उन दिनों सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में प्रकृति तथा साकार दो प्रकार की पूजा विधियां प्रचलित थी, कत्यूरी नरेशों की राज्यावस्था में दोनों प्रकार की पूजा के निर्देश शामिल थे। लोग प्रकृति पूजा

में जहां सरितायें, सरोवर, पहाड़, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, सूर्य चन्द्र, कैलाश, मानसरोवर, नाग, व्याघ्र, हिरण, हाथी, घोड़ा, नन्दी, मोर, हंस, चूहा, गंगा–यमुना, सागर आदि की पूजा करते थे। वहीं शंकर, पार्वती, राम आदि देवी देवताओं की उपासना भी की जाती थी। प्रकृति प्रेम के कारण ही उन्होंने अपने राष्ट्र ध्वज और मुद्राओं में वृषभ (नन्दी) को अंकित किया था। देवताओं के सेनापति कार्तिकेय के नाम से अपनी राजधानी का नाम कार्तिकेयपुर रखा। पार्वती के सम्मानार्थ नन्दा भगवती चरण कमल–कमला सनाथ भूमि से अपने ताम्रपत्र प्रारम्भ किये थे। एक हिमशिखर को ही नन्दा देवी घोषित कर दिया था।

उन दिनों में शिव भक्ति पार्वती विष्णु, गणेश, कार्तिकेय, नरसिंग, राम, कृष्ण, बराह, कूर्म, सूर्य गायत्री, नवदुर्गा आदि देवताओं की विधिवत पूजा के प्रमाण उपलब्ध हैं।

उनके दीर्घकालीन शासन काल में धार्मिक सहिष्णुता सदा बनी रही। सभी नरेशों ने अपने (विरद) उपाधि में परममाहेश्वर, परमवैष्णव, परममहारक, परमब्राह्मण भक्त आदि से उद्घोषित किया है। यथानाम तथा गुण साबित करता है कि उस युग में राजा वैदिक धर्म के प्रति कितने समर्पित और आस्थावान थे। यही कारण थे राजपरिवार, रनिवास की रानियाँ सभी धर्म के प्रति सम्मान भाव से राजा का अनुकरण करते थे। उन्होंने धर्म राज्य की स्थापना की थी।

तपोवन के पास ब्रह्मचारियों के आश्रम स्थापित कर वहां विष्णु भगवान की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी। राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार कत्यूरी नरेशों का बद्रीनाथ तपोवन में ही था क्योंकि वर्तमान बद्रीनाथ में उन दिनों तिब्बत के बौद्धों का कब्जा था।

कत्यूरों के प्रथम सम्राट बसन्तदेव ने वासुदेव का मंदिर जोशीमठ में बनवाया जिसके अन्दर परममहारक महाराजाधिराज वासुदेव 'खुदा' है। आज भी वहां विष्णु व नव दुर्गा की पूजा होती है।

कत्यूरी अभिलेखों में नन्दा (पार्वती) भगवती को राजलक्ष्मी का प्रदाता कहा गया हैं 'राहुल सांस्कृत्यायन' के अनुसार ११–१२वीं सदी में कत्यूरी नरेशों ने कालीमठ की स्थापना की थी।

उनके कार्यकाल में वैदिक ही नहीं ग्राम देवताओं की स्थापना कर उनकी पूजा भी प्रारम्भ हो चुकी थी।

मंदिर स्थापना के लिए ग्राम समूहों के मध्य आवादी से हटकर शान्त रमणीय स्थानों पर देवदार, चीड़ के घने वनों के पास पर्वत शिखर पर, सरिताओं के तट या संगम पर सुरम्य उपत्यका के मध्य या सरोवरों के निकट भूमि का चयन किया जाता था। इसी क्रम में जागेश्वर, बागेश्वर, बैजनाथ, द्वाराहाट, कटारमल, आदिबद्री, पाण्डुकेश्वर, जोशीमठ, अगनेरी ताजेश्वर, तपोवन मन्दिर पुंज उसकी कत्यूर काल की अमर धरोहर है। इनका निर्माण राजकोष तथा जनसहयोग दोनों के मिश्रित योगदान से सम्भव होता था। बेट (श्रमदान) के रूप में प्रजा अपनी भागीदारी करना पावन, कर्तव्य मानती थी। कत्यूर शैली के मुख्य कलात्मक मन्दिरों का निर्माण समूचे उत्तराखण्ड में फैलता गया। भारत यात्रा के दिनों इसी शैली के मन्दिर हमने कोर्णाक व भुवनेश्वर में देखे हैं।

वैजनाथ गरुड़ घाटी में राजधानी स्थानान्तरण के साथ जहाँ राजधानी किला आदि का निर्माण प्रारम्भ हुआ वहीं गोमती व गारुड़ी नदी के संगम पर कई मन्दिर समूह बने। इनमें मूर्ति का अंकन भी वहीं हुआ। यहां पार्वती की ५ फुट ऊंची भव्य मूर्ति सम्पूर्ण भारत में अपने ढंग की एक मात्र दर्शनीय मूर्ति है। मूर्ति की अलौकिक छटा देखते ही बनती है। दर्शक बस ठगा सा देखते ही रह जाता हे। अपलक निहारते–निहारते अपने को भूल जाता है। ऐसा लगता है मानो माता मन्द मुस्कान के साथ आशीर्वाद देती हुई अभी–अभी हमें अपने गोद में बिठाने वाली है। अष्ट धातु की करोड़ों रुपये मूल्य की बनी हुई यह मूर्ति कत्यूरी कला की मानो साक्षात प्रतिमूर्ति बन गई है।

यहाँ के संग्रहालय में पार्वती, विष्णु, कुबेर, सूर्य चण्डिका महिषासुर मर्दिनी तथा अष्टभुजा देवी आदि की सैकड़ों मूर्तियां सुरक्षित रखी हुई हैं। जो कला की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। यही तैलीहाट में विष्णु की मूर्ति अपने आप में अद्‌भुत है। मूर्तियों का आंकलन काले श्याम पत्थरों पर सजीव कलात्मक ढंग से किया गया है।

बागेश्वर शिलालेखानुसार १३वीं सदी में कत्यूरी नरेश महाराजा हमीर देव लिंगराजदेव तथा रानी परलदेवी ने नारायणी मंदिर में स्वर्ण कलश चढ़ाये थे। मन्दिरों के पास एक चबूतरा बनाया गया है। बैजनाथ के १०–१२ किमी० के घेरों में गोमती के निकट कत्यूरी काल के सैकड़ों मन्दिरों के अवशेष बिखरे पड़े हैं।

बागेश्वर जिसको पहाड़ की काशी कहा जाता है, गोती सरयू के संगम पर बागनाथ (वयाघ्रेश्वर) का पुराना मन्दिर था। कत्यूरी राजाओं ने मूल मन्दिर का जीर्णोधार कराया, यहाँ सांतवी से तेरहवीं सदी में निर्मित अनेक मूतियां देवी देवताओं की आज भी मौजूद हैं।

चम्पावत में बालेश्वर, रतनेश्वर व दुर्गा के मन्दिरों की कला वैभव देखते ही बनती है। ब्रह्मा, विष्णु, व महेश की मूर्तिया दर्शनीय हैं। कई अन्य देवी, देवताओं के मन्दिर समूह यहां बने हैं जो कत्यूर काल के हैं।

गंगोलीहाट में कत्यूर काल में निर्मित विष्णु मन्दिर इन्हीं दिनों बने थे। गंगोलीहाट का ज्वाहनी, नौला विष्णु भगवान के दो मन्दिर कुछ दूर कत्यूरी किलों के खण्डहर भड़कोट में स्थित है।

पाताल भुवनेश्वर के पास आसान्ति देव की पटरानी सुभद्रादेवी के बनाये मन्दिर विद्यमान हैं। यहां राम व हनुमान की मूर्तियाँ हैं। बलुवाकोट थल आदि अनेक स्थानों पर कत्यूरी काल के मन्दिर बने हुए हैं।

एक शाखा ११वीं सदी के आसपास द्वाराहाट आई यहां ३० मन्दिर समूह कत्यूर काल के हैं। बहुत से नौले उस काल के बने अब तक हैं साजदेव द्वारा बनाया पोखर जिसके नाम पर प्रतिवर्ष स्यालदे का मेला द्वाराहाट में होता है। गूजरदेव का ध्वज जो अतीत में विशाल व भव्य रहा होगा उसका ध्वस्त स्वरूप आज भी अपने गौरवमय अतीत का स्वयं साक्षी दे रहा है। दीवारों पर उत्कीर्ण देवी देवताओं की मूर्तियां, हाथियों की कतारें, विभिन्न मुद्रायें उस काल की सभ्यता व संस्कृति के द्योतक हैं। यहां बद्रीनाथ, केदारनाथ, महामृत्युजंय व काली का मन्दिर है। सामने सुधारदेव द्वारा स्थापित वैष्णवी का दूनागिरी मन्दिर जो सम्वत् ११७६ में बनया था।

जागेश्वर–अल्मोड़ा से ३५ किलोमीटर पूर्व में है। शैव संस्कृति का केन्द्र जागेश्वर जो कत्यूरी मूर्ति कला एवं मंदिर स्थापना का दर्शनीय स्थल है। यहां १५० देवालय सघन वरुन वनों के मध्य अवस्थित हैं। ८वीं ९वीं में बने ये मन्दिर पुंज कत्यूर कुल की कीर्ति पताका आज भी प्रदर्शित कर रहे हैं।

एक कथानुसार यहां भगवान राम के पुत्र लव–कुश ने यज्ञ किया था। विशाल यज्ञ कुण्ड आज भी अपनी जगह बना है। अगल–बगल विशाल देवदार के वृक्ष हैं। यहां संगम पर कई कत्यूर रानियां सती हुई थीं।

पुरणों में वर्णित नील पर्वत दारुन वन में स्थित जागेश्वर (नागेश्वर) द्वादस ज्योर्तिलिंगों में एक है। इनका मूल निर्माण शालिवाहन तथा राजा विक्रमादित्य ने कराया था। बाद में कत्यूरी नरेशों ने जीर्णोद्वार तथा कुछ नव निर्माण वहां कराये थे, साथ में भूमि दान दी थी।

यहां मुख्य विशाल महामृत्युंजय के अलावा दुर्गा, भवानी, सूर्य आदि कई देवी देवताओं की मूर्तियां व मन्दिर हैं। एक संग्रहालय भी है। मूर्तिकला की दृष्टि से जागेश्वर धाम सर्वोपरि कला केन्द्र बन गया है।

कटारमल–कटारमल का सूर्य मन्दिर भारतवर्ष के चन्द गिने चुने सूर्य मन्दिरों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसको देखकर इसकी विशालता, भव्यता और कला वैभव का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। मुख्य द्वार दर्शनीय था जो अब देहली के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित है। कोर्णाक में हमने सूर्य मन्दिर देखा, इन दोनों में बहुत सा सामंजस्य है। कटारमल का सूर्य मन्दिर कटारमलदेव ने बनवाया था।

सूर्यमन्दिर–कटारमल के अलावा कत्यूरी नरेशों ने वेलार (वेल) वैजनाथ, पमाई (अल्मोड़ा) रमक (महरकासी) नैनी (लखनपुर) चौगरखां में जागेश्वर जोशीमठ, मिरत, (सतलज गढ़वाल सीमापार) ऊखीमठ, गोपेश्वर आदि स्थानों पर बनवाये थे।

आदिबदरी में कत्यूर शैली के १६ मन्दिर हैं। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार ऊखीमठ का सूर्य मन्दिर कत्यूरों ने बनवाया था। उनका मत है कि लकुशीय कत्यूरी राजाओं के कुलगुरु थे। वे ही कत्यूरी भैली के मन्दिर एवं मूर्ति निर्माता तथा अधिष्ठाता थे।

कत्यूरी नरेश स्वयं शिवभक्त होते हुए बद्रीनाथ, तपोवन जोशीमठ, विष्णुप्रयाग, वैजनाथ आदि स्थानों में विष्णु के मन्दिर व मूर्ति प्रतिष्ठित कराकर अपनी राजनैतिक उदारता को सिद्ध कर गये हैं।

गोपेश्वर, जोशीमठ, आदि अनेक स्थानों पर कत्यूर काल के भव्य मंदिर बने हुए हैं।

पाण्डुकेशर–यहां कत्यूरी काल के दो मन्दिरं हैं। एक गोलशिखर वाला दूसरा नोकदार शिखर वाला। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार वर्तमान बद्रीनाथ को स्थापित करने से पूर्व यही (पाण्डुकेशर) बद्रीनाथ धाम रहा होगा। तभी इसका नाम योगबद्री था।

यहाँ रखे चार कत्यूरी काल के ताम्र शासनों के मिलने पर पुरातत्व नेताओं को पाण्डुकेशर का महत्व ज्ञात हुआ। इन चारों में से एक को एक अंग्रेज अफसर उड़ा ले गया, शेष तीन अभी भी जोशमीठ के आभूषण भण्डार में बद्रीनाथ के आभूषणों के साथ खज़ानची व सेकेट्री के संयुक्त संरक्षण में डबल लॉक में सुरक्षित हैं। उनमें एक ललितसूरदेव का है जिसकी फोटो प्रति इसी पुस्तक में दी गई है। गेवाड़ जो कत्यूरों की कर्म भूमि रही यहाँ वैराठ के भग्नावशेष, लखनपुर का किला आसन, वासन के खण्डर हाट, दीपाकोट, डांग, अगनेरी, वक्रतुण्डेश्वर चित्रेश्वर, मासी, रामपादुका, बूढ़ाकेदार, नैथडा, मानिला जालली, भिक्यासैण (धुधलिया में गणेश मूर्ति) आदि स्थानों पर कत्यूरी मन्दिर बने थे जो अब या तो काल के प्रवाह में विलीन हो गये हैं या भग्नावशेष मात्र हैं।

सभी कत्यूरी नरेशों ने अपनी राज्य सीमा में यत्र–तत्र अनेकों छोटे बड़े देवालय मन्दिर बनवाये। उनका दृढ़ मत था कि ये मन्दिर जहाँ हमारे स्वाभिमान के प्रतीक बनेंगे वहीं आने वाली पीढ़ी के लिए श्रद्धा–विश्वास एवं प्रेरणा के स्रोत साबित होंगे। और जब–जब आस्था संकट सामाजिक रूप में फैलेगा या व्यक्तिगत चरित्र में ह्रास आयेगा तब–तब ये देवालय भटकते समाज व मानव को गुरु बनकर भारतीय संस्कृति की याद दिलाते हुए सन्मार्ग का मूक संदेश देते रहेंगे।

कत्यूरी शासन की यही सबसे बड़ी देन वर्तमान और भावी पीढ़ी के लिए है।

मैदानी क्षेत्र के यानी टनकपुर से लिपुलेख होकर कैलाश मानसरोवर या टनकपुर, लोहाघाट, जागेश्वर, बागेश्वर, चौखुटिया, आदिबदरी होकर बद्रीनाथ यात्रा या हरिद्वार, देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, केदारनाथ, बद्रीनाथ तक या टनकपुर, चम्पावत, अल्मोड़ा, ग्वालदम, बद्रीनाथ की यात्रा करते थे। कुछ ब्रदीनाथ से माणा, फिर कैलास मानसरोवर, खोचरनाथ होकर नेपाल के रास्ते टनकपुर पहुंचते थे। इधर पहाड़ के तीर्थयात्री हरिद्वार–प्रयाग, उज्जैन और पुष्कर के कुम्भों के अलावा भारतभर के चारों धामों, सप्तपुरियों द्वादस ज्योर्तिलिंगों के दर्शन करने जाते रहते थे।

इन देव मन्दिरों के लिए प्रधान पुजारी का चयन उसके चरित्र योग्यता तथा वंश को दृष्टिगत करते हुए राजा द्वारा की जाती थी। देव प्रतिमाओं को शुद्ध जल, दूध, दही, धृत, शहद से स्नान व अभिषेक के उपरान्त गन्ध अंगराज लेपन, धूप, दीप, पुष्प, पुष्पाहार, पत्र, पुष्प फल, अन्न नैवेद्य, मिष्ठान और द्रव्य चढ़ाये जाते फिर देवी–देवताओं की प्रसन्नता के लिए नियमानुसार वेद पाठ, स्तुति, गीत, भजन, नृत्य, वाद्य होता। उसके लिए ब्राह्मण, सेवक व नृत्यांगनायें नियुक्त होती थी जो वंशानुगत चलती थी। जहाँ भी कत्यूरी राजधानियाँ बनी वहाँ आज भी नृतयांगनाओं के गांव हैं उनको पुरस्कार व जागीरें आदि पारितोषिक दिये जाते थे।

मन्दिर व्यवस्था के लिए राजा द्वारा भूमि, गांव व इलाके दान में दिये जाते थे। जिसको विष्णुप्रीति कहा जाता था। लोक परिलोक में उत्तम गति के लिए दान का बहुत बड़ा महत्व उस युग में था।

ऋृगवेद १/१६४– में "एक सत् विप्रावहुदावदन्ति" (परमात्मा एक है) परन्तु विद्धानों ने नाना नामों, से उसकी व्याख्या की है। इसीलिए कत्यूर युग में एकेश्वर वाद, भक्तिवाद, दर्शनवाद, आदि को समुचित विकास का अवसर मिला। उनका विश्वास था "य तो दम्युदयनि श्रेयससिद्धि स धर्म" यानि कि मानवीय जीवन सुखी बन सके और मृत्युपरान्त जीवात्मा परमशान्ति को प्राप्त हो वंश, धर्म को एक ऐसा ही सेतु (पुल) बनाया गया था जो यह लोक और परलोक को जोड़ने की कड़ी बन सके और जो अज्ञात को ज्ञात बनाकर ऐसा जन जागरण कर सके कि जियो और जीने दो के साथ ब्रह्मा और जीवात्मा के बारे में अधिक से अधिक निकटता हासिल की जाय। कत्यूरी

धर्मराज के माने थे। धार्मिक वातावरण के माध्यम से नैतिकता को विकसित करना अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, वरुण, इन्द्र, अश्विनी, सरिता, प्रजापति, विश्वेदेवा, सरस्वती, सावित्री, गायत्री, इला, भारती, इन्द्राणी, वारुणी आदि देवी देवताओं की स्तुति कराने का गूढार्थ था ईश्वरीय सत्ता सर्वत्र है। सबमें विद्यमान है प्रकृति से प्रेम करो पर मानव से घृणा मत करो, ईश्वर का हर वस्तु में दर्शन करो, बस इन्हीं सूत्रों के अन्दर सारी धार्मिक मान्यतायें समायोजित हो जाती है।

उन नरेशों ने वेदों के अध्ययन में कहीं भी पशुबलि का उल्लेख नहीं पाया। वेदों ने अहिंसा के सिद्धान्त का हर मंत्र में प्रतिपादन किया है स्थावर व जंगल जीवों को एक समान माना गया है उन दिनों खस, किरात, हूण, आदि जातियाँ पशुबलि करते थे। कत्यूरी नरेशों ने सभी प्रकार की हिंसा पर प्रतिबन्ध लगाया था अपने ताम्र पत्रों में इसकी स्पष्ट घोषणा की थी।

ब्राह्मणों को विशेष सम्मान दिया जाता था वे अवध्य थे। नरेशों ने अपने ताम्रशासकों में अपने को परम ब्राह्मण भक्त से सम्बोधित किया है। इसके पीछे दो भावनायें छिपी थी। प्रथम ब्राह्मण अपना चरित्र निर्माण इतना ऊँचा बनाये कि उनके दर्शन मात्र से सद्बुद्धि सद्ज्ञान का प्रादुर्भाव स्वतः होने लगे। दूसरा जब राजा उनको इतना सम्मान दे रहे हैं तब प्रजा स्वयमेव उनको आदर देगी उनके बताये मार्ग पर चलेगी इसी विचार धारा ने कत्यूरी शासन को चिरस्मरीय व पूजनीय बना दिया था। धर्म का चरणवद्ध विकास होता चला गया जो आज हमारे जीन्स में समा गया है।

मन्दिरों में धर्मशालायें भी वहां सत्संग पठन पाठन चलता था साधकों को निःशुल्क भोजन आवास उपलब्ध था। राजपरिवार की तरफ से कई मन्दिरों में अखण्ड दिये जलते थें।

वहाँ सामूहिक रूप से चूणाकरण, उपनयन, यज्ञोपवीत व विवाह आदि संस्कार कराये जाते थे।

ये मन्दिर पक्षपात रहित न्यायालय थे। पीड़ित व्यक्ति दीप जलाकर एक अंजलि जल या चावल लेकर अपनी अन्तरवेदना या अपने ऊपर हुए अन्याय या मनोकामना को देवता को सुनाकर न्याय की गुहार करं मन हल्का कर न्याय का इन्तजार करता था।

पर्वों त्योहारों के अवसरों पर सामूहिक रूप से पूजा अर्चना कर मनोतियाँ मांगते सभी लोग आमोद–प्रमोद करते। मन्दिर सार्वजनिक सम्पत्ति होते थे। उनकी सेवा का द्वार सबके लिए खुला रहता था।

देशव्यापी तीर्थयात्री के लिए ये मन्दिर एक कड़ी का काम करते थे। एक मन्दिर से दूरस्थ अन्य तीर्थ तक जल, माटी को तीर्थ यात्रा के समय प्रसाद रूप में अपने साथ ले जाने इससे एक अभूतपूर्व आत्मतृप्ति, आत्मसन्तोष और सुखानुभूति की कमी न भुलाई जाने वाली यादगार चिरकाल तक बनी रहती और वहां की संसकृति, रीति–रिवाजों का आदान–प्रदान का अवसर मिलता। इस प्रकार मूक उपदेशक का प्रचार कार्य करते थे ये मन्दिर समूह।

मन्दिर और उनमें प्रविष्ठित अधिष्ठता देवता पथिक को जहां यह संदेश देते हैं – **है बहारे बाग दुनिया चन्द रोज, देख लो इसका तमाशा चन्द रोज।** वही यह मूक संदेश भी देते हैं कि सम्मानपूर्वक जीवन यापन के लिए और अपनी संसकृति की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करते रहो अपनी भावी पीड़ी के मार्ग दर्शन हेतु अपने सत्कर्मों के स्मारक छोड़ जाओ। इन देवस्थलों का शान्त–पवित्र वातावरण अपना अमर संदेश देता रहता है। कि अतीत की आत्मधाती मूलों की पुनरावृत्ति मत करो। भूतकाल का हउवा भविष्य की चिन्ता अग्नि में न जलकर बस वर्तमान को देखो। समय का सदुपयोग करो समय को अपने अनुकूल करो। अभय बनो। विजयी भवः। यस्ववी भवः।

कत्यूरी राज्य से गुजरते हुए चीनी यात्री ह्वेनसांग अपनी पुस्तक सी०यू० की में लिखते हैं कि उत्तरी भारत में छोटे राज्य थे। राजा धार्मिक प्रवृति अंकुरित कराने में इतने व्यस्त रहते थे कि उनको खाने व सोने तक की सुध नहीं रहती थी। उन्होंने मांसाहार व पशु हत्या बन्द करा दी थी। राजा दिन के प्रथम चरण में राजकाज करते द्वितीय भाग में धर्म कार्यों में लीन रहते थे।''

धार्मिक सकेंत–कत्यूर युग में हर संस्कार, पर्व और कार्यों के लिए धार्मिक संकेतों का खूब प्रचलन हुआ जो लोक कल्याण, की समृद्धि, सुखशान्ति प्रदाता तथा शुभ संकेत माने जाते थे। इनमें भंख कमल, त्रिशूल मीन (मछली)

स्वस्ति चिन्ह, गज (हाथी), बन्दर, हंस, दीपक, दही, दूर्वा आदि थे। ऐपणों का प्रचलन कत्यूर काल में हुआ जो आज कुमांऊ गढ़वाल ही नहीं सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक पहचान बन गई है।

त्यौहार–उस युग में प्रचलित त्यौहारों में सम्वतसर, चैत्रा अष्टमी, रामनवमी, विषवत संक्रान्ति, वट सावित्री, गंगा दशहरा, हरयाला (कर्क संक्रान्ति, हरिशयनी एकादशी (रक्षाबन्धन), जन्माष्टमी, नन्दास्टमी, अनंत चर्तुदशी, कार्तिकी पूर्णिमा, मकर संक्राति (उत्तरायणी) बसन्त पंचमी, शिवरात्रि, होली, दीवाली, इनमें बहुत से प्राचीन काल से चले आ रहे त्यौहार थे। लेकिन कुछ का प्रारम्भ कत्यूरी नरेशों ने करवाया था। ये त्यौहार सामूहिक तथा कुछ व्यक्तिगत मनाये जाते थे इनके अलावा पूर्णमासी, अमावस्या, एकादशी, चर्तुदशी आदि पर्वों पर व्रत पूजा आदि का प्रचलन भी था।

हर नागरिक जीवन भर सामाजिक मान्यताओं और मर्यादाओं का निष्ठा से पालन करता था, जन्मोत्सव, छठी, नामकरण, अन्नप्रासन्न (पासिणी), विद्यारम्भ, उपनयन, कर्णभेद, यज्ञोपवीत, विवाह और मृत्यु संस्कार मुख्य संस्कारों में थे जो प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य थे। बारह वर्ष तक के मृत बालकों को भूमि में, समाधिस्त तथा बड़ों का अग्नि संस्कार नियमित शमसानों में होता था। राज परिवार का सम्भ्रान्त परिवारों में सती प्रथा थी।

सुव्यवस्था के लिए मृत्यु परांत सहगोत्रियों को सिर्फ सात पुस्तों तक मुंडन तथा आठवें पुस्त से मात्र तीन दिन का सुतक निर्धारित किया गया था। ये धार्मिक नियम आज भी चले आ रहे हैं यह समाज को अनुशासित, सभ्य ओर संस्कारवान बनाने में कत्यूरों का योगदान, अविस्मरणिमय रहेगा। यही धार्मिक श्रद्धा उनको देवता के रूप में पूज्यनीय बना गयी।

कत्यूरों को श्रद्धांजलि, समर्पित करने के लिए पर्वतीय आंचलों में, रानीवाग, जोशीमठ, तपोवन, बद्रीनाथ, केदारनाथ, सुईठौ (रामगंगा नदी पर लखनपुर के सामने) रामपादुका (गेवाड़) रामेश्वर (पिथौरागढ़) वैजनाथ, वागेश्वर, जागेश्वर आदि तीर्थ स्थलों के लिए प्रतिवर्ष तीर्थ यात्राऐं अब भी की जाती हैं।

तपोवन–जोशीमठ से १५ किमी. उत्तर में धौली नदी के तट पर ५५०० फिट की ऊँचाई में तपावेन (सुमिक्षपुर) स्थित है, कत्यूरों की मूल राजधानी यहीं थी। किले के भग्नावशेष, कत्यूरी शैली के कई मन्दिर जिनकों वहां सूना–मूना देव कहते हैं, इनमें पार्वती, गणेश, नवदुर्गा, अष्टमात्रकायें की मूर्तियाँ स्थापित हैं। अपने भ्रमण काल के दौरान मैंने वहाँ मिट्टी पात्रों के टुकड़े, लौहे के टुकड़े, भवन निर्माण की शैली, और पुराने मन्दिर ठीक उसी प्रकार देखे, जैसे लखनपुर और बैजनाथ में हैं। इससे सिद्ध होता है कि कत्यूरों की यह मूल राजधानी रही होगी। इसके चारों तरफ गोलाकोट, चौथुबंगराकोट, चौदहरकोट, सिकन्दार कोट व भिड़ाकोट किले थे। यहाँ तप्तकुण्ड के धारे हैं तपोवन मेरी कत्यूरी–ऐतिहासिक यात्रा का अन्तिम पड़ाव था।

कत्यूरी शासन व्यवस्था

पूर्व काल में जब मानवीय सभ्यता का विकास प्रारम्भ हुआ; उन दिनों न राजा होता था, न राज्य और न दण्ड विधान ही थे। सब लोग परस्पर धर्माचरण से रहते थे। नैसर्गिक (प्राकृतिक) नियमों का पालन कर सुख शान्ति का जीवन व्यतीत करते थे। लेकिन कुछ काल बाद आगे चलकर लोगों ने अपनी स्वतंत्र महत्वाकांक्षा से इन परिस्थितियों का अन्त कर दिया। फलस्वरूप वे छोटी–छोटी बातों पर आपस में लड़ते–झगड़ते, सशक्तों द्वारा कमजोरों का नाश करना, चारों ओर असुरक्षा का वातावरण फैलता गया। इससे उनका जीवन कष्टप्रद व असुरक्षित होता चला गया। पशु एवं मानव में कोई अन्तर नहीं रह गया।

मनुस्मृति '७/३–२०' में लिखा है तब परमात्मा ने एक देव स्वरूप मानव को उत्पन्न किया देव शब्द दिव्यधातु से बना है। जिसका अर्थ प्रकाशवान, देदिव्यमान होता है। देव शब्द से आत्मिक भक्ति का भी बोध होता है। यानि एक दिव्य तेज से आलोकित वाला व्यक्तित्व। ऐसे महापुरुष को देव शब्द से सम्बोधित किया गया है। जो समय–समय पर मानव को सन्मार्ग पर लगाने के लिए उत्पन्न होते रहते हैं। अनेक लोगों ने मिलकर अपनी सुरक्षा के लिए तय किया कि अपना एक संरक्षक (राजा) चुनना चाहिए। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की परवाह किये वगैर सामाजिक सुख शान्ति व उन्नति के लिए राजसत्ता के अधीन रहना स्वीकार किया। महाभारत बृहस्पति, स्मृति, नारदपुराण आदि ग्रन्थ इसकी पुष्टि करते हैं।

आरम्भ में सबने मिलकर अपने में से एक देवपुरुष को राजा चुन दिया राजा ने प्रजा की सुख सुविधा की प्रतिज्ञा ही। राज्याभिषेक पर मन वचन कर्म से धर्मानुसार प्रजा के हित में अपने को समर्पित होने का संकल्प राजा लेता था। और जीवन पर्यन्त उसका पालन करना था।

प्रजा ने उसका अधिपत्य स्वीकारा इस प्रकार पिता के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र वंशानुगत राज्य व्यवस्था प्रारम्भ हुई।

राजा के कर्त्तव्य व अधिकार साथ–साथ चलते थे। प्रजा का रंजन करना,

राज्य को समृद्धि शाली बनाना प्रजा को प्रसन्न रखना, अराजकता को दूर करना, अपराधी को दण्ड देना, शत्रुओं से युद्ध करना, प्रजा की रक्षा करना, न्याय करना, धार्मिक कृत यज्ञादि करना, कराना मुख्य कार्य होते थे। राजा विनयशील और नियमवद्धता का पालक, इन्द्रियदमक, विद्यारत, धर्मप्रिय और प्रवक्ता तथा वीरवर होता था। सतपथ के अनुसार राजा में परमात्मा का विशेष अंग होता है। राज्याभिषेक के समय अग्नि गायत्री बृहस्पति सूर्य आदि देवताओं को राजा के शरीर (अनन्तकरण) में प्रवेश की प्रार्थना की जाती थी। ताकि वह विशेष ऊर्जा युक्त हो सके।

प्रारम्भ में आठ प्रकार की शासन विधियों का प्रचलन हुआ। इनमें साम्राज्य, भोज्य, स्वराज्य, वैराज्य, राज्य, परमेस्चट महाराज्य और अधिपत्य आगे चलकर कुछ काल बाद प्रजातन्त्र और राजतन्त्र दो ही पद्धतियां प्रचलित हुई। महाभारत वन पर्व (२७१२) में उत्तराखण्ड में पांच गणराज्यों का वर्णन आया है। इनमें गंगोली गणई तथा वैराठ गणई दो गणराज्य कुमाँऊ में थे।

"किरीट जितवान राजन् देशान पश्चगणान्ततः"।।

अनेक राज्यपरिवारों के बाद राजतन्त्र के अन्तर्गत इन हिम प्रान्तों में कत्यूरी राज परिवार का प्रार्दुभाव हुआ। कत्यूरी राजाओं का सर्वोच्च पद (विरुद्ध) महाराजाधिराज (नरेश) होता था। नरेश के पुत्र भाई चाचा आदि परिजनों को किसी विषय (जनपद–जिले) का प्रशासक बनाया जाता। जिसको राजा कहा जाता। कई विषयों (जिलों) को मिलाकर मंडल होते। उनके प्रशासक को महाराजा उपाधि से विभूषित किया जाता। जिलों के वरिष्ठ प्रशासक बाद में राजा से महाराजा बनाये जाते। इनको राजपुत्र भी कहा जाता था। नरेश का ज्येष्ठ पुत्र सिहांसन का उत्तराधिकारी होता था। राज्यभिषेक से पूर्व उसको किसी विषय और मण्डल का प्रशासक बनाया जाता था। उन दिनों उसका विरुद्ध राजानक होता था।

विषयों (जिलों) को उपविषयों में बाँटा जाता था। सामरिक महत्व को देखकर उप विषयों को छोटे–छोटे गढ़ों (कोट–किला) में बाँटा जाता था। जिसके प्रशासक को कोटपांल या गढ़पति कहा जाता था। वह गढ़पति राजपरिवार का सदस्य या पूर्व से चला आ रहा खस परिवार का सामन्त

का व्यक्ति वंशानुगत पद्धति के पदेन होता था। गढ़पतियों का शासन आस–पास के दो–चार पट्टियों तक सीमित रहता था। मण्डलों की सुरक्षा, प्रजा पर नियंत्रण तथा राजस्व कर की वसूली का काम गढ़पतियों के जिम्मे होता था। उनके मातहत एक सैनिक टुकड़ी रहती थी। खश सामन्तों को ठक्कुर (ठाकुर) कहा जाता था। कोटपाल के अधीन कई गांव होते, गांवों के मुखिया को गोप या पधान कहा जाता जिनका दायित्व गांव की व्यवस्था, राजकर की वसूली कर कोटपति तक पहुंचाना तथा राजाओं का पालन करना होता था।

राजा साम्राज्य का उच्चतम तथा सार्वभौम अधिकारी होता था। परन्तु वह कभी भी मनमाने ढंग से राज्य शक्ति का प्रयोग नहीं करता था। वह प्रशासन, न्याय, सेना का प्रधान होता था। युद्ध के समय स्वयं युद्ध का संचालन करता। बड़े–बड़े अपराधों का निर्णय स्वयं करता। जनहित के कार्यों में सदा व्यसत रहता। बरसात के अतिरिक्त राजा सदा सारे राज्य का निरीक्षण करता था, प्रजा की बाते सुनता।

सेना में पैदल घुड़सवार हाथी रथ होते थे। अधिकांश सैनिक अस्थाई होते थे। युद्ध के समय उनको बुलाया जाता। उनको वेतन के रूप में जागीरें दी जाती थीं। गुप्तचर विभाग भी होता था। उन दिनों पुलिस का काम गुप्तचरों के जिम्मे था।

राज्य की आय–भूमि उपज का छठा हिस्सा राजकोष में जमा होता था। उसके अतिरिक्त अर्थदण्ड, व्यापार कर, चुंगी और युद्ध में जीती सम्पति से होती थी। आय का अधिकांश हिस्सा वेतन, दान पुण्य, धर्म व पुरस्कार में खर्चा किया जाता था। धर्म मालायें, मन्दिर मार्ग, पुल, बावड़ियां, विश्राम स्थल में भी एक भाग आय का व्यय किया जाता था। पूरा राज्य एक शासन (केन्द्रीय) सूत्र में बंटा होता था। आम जनता का जीवन उस युग के अनुसार सुखमय था। लोगों का उच्च नैतिक चरित्र, सरल स्वभाव और राजभक्ति और कष्ट साध्य जीवन था।

उच्चवर्ग की भाषा संस्कृत तथा आम भाषा पाली व प्राकृत थी। राजा विद्वान न्यायप्रिय तथा धीर–वीर होता था।

राज्य की सुव्यवस्था के लिए कौटिल्य के अर्थशास्त्रानुसार सारे शासन तन्त्र को १८ विभागों में बाँटा गया था। इनमें महाराजाधिराज के अधीन महाअमात्य प्रधानमंत्री, महाराज, राजा, सजयक (राजकुमार) राजपुत्र दृस्टस्वेस्टपाल (हाथी, घोड़ा रक्षक) व्यपितृक (मन्त्री या दूत) दूत प्रेमनिक (चिट्ठीरसां) देहिक (असावदार) दंडपालिक (नाजिर) विषयव्यपिकृत (जिलामन्त्री) गमागमी (संदेशवाहक) खडगिक (अधिकारी) पुरोहित, राजा अमात्य (राज्यमंत्री) सामंत (मण्डलीक राजा) महासामंत (सेनापति) महावर्ता कृतव (उच्च निरीक्षक) महादण्डनायक (प्रधान न्यायाधीस) महाप्रतिहार (प्रधान रक्षक) महामत्ताधिपति प्रभातार (सुबेदार) उदाधिक (सुपरिन्टेन्डेन्ट) कुमारात्म (राजकुमार मन्त्री) दुसाध्यसाधिक (कठिन कार्य करने वाला भद्र) दोणापराधिक (खुफिया उच्च अधिकारी) चोरोधराणिक (चोरों का पकड़ने वाला) सौलाकिक (चुंगी अधिकारी) गोलामिक (सैनिक) तारायुक्त (अवकाश प्राप्त अधिकारी) पटकोचरिक (वस्थ मंत्री) सौध गगदिकृत (प्रधान महल मन्त्री)

- कत्यूरी ताम्रमासन से

उक्त प्रकार १८ विभागों के विभागाध्यक्ष और उनके मातहत सैकड़ों उच्च अधिकारी जिस राज्य में कार्यरत होंगे। सहज ही उस राज्य की विशालतम प्रशासन की कल्पना की जा सकती है। उस अस्थिर काल में इतनी सुप्रबन्ध राज्यव्यवस्था का प्रारम्भ करके कत्यूरी नरेशों को आज भी देवता को पदवी देकर पूजा जाता है।

महाराजाधिराज परम्परागत और जनमान्यताओं के अनुरूप समस्त भूमि, वन, खनिज आदि राज्यसम्पदा का वास्तविक स्वामी होता था। वह परम्पराओं का ध्यान रखते हुए सम्पदा का वितरण अपने विवेकानुसार करता था। किसी भी व्यक्ति को पुरस्कार, जागीर, पद, प्रताड़ना, संरक्षण व मृत्युदण्ड दे सकता था। ये सारे उच्चाधिकार (महाराजाधिराज) को सिंहासन से प्राप्त होते थे। भूस्वामित्व नरेश को निहित होने से राजा को भूमिया भी कहा जाता था। श्रद्धा व निष्टा के कारण आज भी भूमिया (देवता) प्रचलित है।

रौत राज्य की रक्षार्थ दिया जाने वाला पुरस्कार था। संकल्प–या विष्णुप्रीति पुण्य प्राप्ति मन्दिर व्यवस्था, देवपूजन आदि के लिए राजा द्वारा दिया जाने वाला भूमिदान का नाम था। विशिष्ट व्यक्तियों, विद्वानों ब्राह्मणों

को दी जाने वाले भूमिदान का उल्लेख ताम्रपत्रों द्वारा प्रकाशित व उद्घोषित होता था।

राज प्रसाद के दो भाग होते थें एक में महाराजाधिराज का सिंहासन होता था। जहाँ बैठकर वे आमात्यों राजगुरु आदि के साथ परामर्श कर राजाज्ञा देते। दूसरे भाग में अमात्य, मन्त्री, राजगुरु तथा सेनापति व विभागों के अधिकारी कार्य करते थे।

ग्राम्य बंजड़ भूमि पर कृषि करने वाले को धाती या धातवान कहा जाता था। धात पर कृषि का अधिकार वंशानुगत परम्परानुसार मिलता रहता था। राजभार न देने या किसी राजद्रोह की स्थिति में धातवान की भूमि को राजा वापस ले लेता था।

पिता अपनी कास्त को सौतिया बाँट या जैसा चाहे बँटवारा कर सकता था। परनतु उच्च कुलों में विवाहित पुत्रों को ही पिता की सम्पति मिलती थी। कत्यूरी काल में तीन वर्ग थे। (१) शासकवर्ग इसमें कत्यूरी राजा उनके वंशज तथा सहयोगी ब्राह्मण थे। (२) शाषित प्रजा खस–किरातः जो कृषक व पशु पालक थे। (३) प्रजा–खस किरात अनुसूचित जाति जनजाति आदि सभी प्रजानन आते थे।

प्रत्येक जाति वर्ग के लिए विवाह, मृत्यु, जन्मोत्सव सम्बन्धी आचार संहिता लागू थी। उसका सभी नागरिक पालन करते थे।

प्रारम्भ में पूरा कत्यूरी राज्य जिसकी राजधानी तपोवन (कार्तिकेयपुर) थी १६ मण्डलों में बँटा था। इनमें ८ केदारखण्ड में तथा ११ मानस खण्ड में थे। केदार खण्ड में (१) टंकण (२) दुर्गाम (३) भिजंग (४) बाडाहाट (५) राठ (६) चाठ (७) मानसकरण (८) लाखा मण्डल शामिल थे। मानसखण्ड में (१) कत्यूर दानपुर (२) पाली (३) वारामण्डल (४) कोटा (५) कालीकुँमाऊ (६) गंगोली (७) शोर (८) सीरा (६) अस्कोट (१०) भोट (११) डोटी राज्य की प्रथम इकाई गाँव थी।

उस युग में गाँव के मुखिया को ग्रामणी, ग्रामकूट कहीं ग्रामपति कहीं पट्टालिकया भोजक नाम से पुकारा जाता था। जो वंशानुक्रम से नियुक्त होते थे। इनका काम कूटपति (गठपति) को कर वसूली व ग्राम व्यवस्था

में मदद करना तथा राजाज्ञाओं को प्रजा तक पंहुचाना व अनुपालन करना, साथ ही प्रजा की शिकायतें उचित माध्यम से सिंहासन तक पहुंचाना था। सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई तोक फिर गाँव कई गाँव मिलकर गरखा और कई गरखा मिल कर उपविषय कई उपविषय मिलकर विषय (जिला) कई विषय मिलकर मण्डल कहलाते थे। गाँव की सबसे छोटी इकाई घर (परिवार) होता था।

राज्य के बहुत बड़े भू–भाग पर वन फैले थे। पर्वतीय ढलालों पर बस्तियां खेती व पशुपालन होता था। भावर तराई के वनों में बाँस, साज, बल्लभ, खैर सीसम आदि बहुमूल्य इमारती वृक्षों के जंगल थे। ऊँचे पर्वतों में रिंगाल, बाँज, देवदारु, बुरुस, चीड़ आदि के नाना वृक्ष होते थे। बहुत सी जड़ी बूटियाँ चारे के वृक्ष पैदा होते थे।

खनिज सम्पदा पर आधारित व्यापार में सुवर्ण, ताँबा, लोहा उत्तमकोटी का सुहागा, स्फटिक मिलता था।

चवर, ऊनी वस्त्र, घी, शहद का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था। तिब्बत का लैचा नमक ही उपयोग में आता था। इतिहासकार महेश जोशी लिखते हैं "कि कत्यूरी नरेशों के इतिहास में सर्वाधिक समय तक राज्य संचालन के अनेक कारणों में एक प्रमुख कारण था स्थानीय धातु के खानों पर नियन्त्रण उसका उपयोग वे स्वयं करते तथा पड़ोसी राज्यों को निर्यात भी करते थे। इनमें सोना व अष्ट धातु की मूर्तियां कलश आदि प्रमुख थे।

गोपालन व कृषिकर्म पवित्रम कर्तव्य माना जाता था। गोवंश की पूजा होती थी इसीलिए कत्यूरी नरेशों ने अपनी मुद्रा व राष्ट्र ध्वज में नन्दी (वृषभ) का चिन्ह अंकित कर गोवंश के प्रति अपनी पूज्यनीय श्रद्धा प्रदर्शित की थी। व्यक्तिगत पारिवारिक तथा सामाजिक सुव्यवस्था व आध्यातिम्क विकास के लिए १६ संस्कार अनिवार्य रूप से सम्पन्न कराये जाते थे। लोग ईमानदार थे। धन के मामले में छल प्रपंच नहीं करते थे। राज्यनियम तोड़ने पर कारावास होता था। राजद्रोह या गम्भीर अपराधों के लिए देशनिकाला या मृत्युदण्ड था न्याय व्यवस्था के लिए न्यायाधीश (महादण्डनायक) होते थे। राजा स्वयं भी यह कार्य देखते थे। इसके लिए अग्नि, जल धारदार हथियार

विष परीक्षा की विधियाँ भी प्रचलित थी। समाज में धार्मिक आस्थाओं के प्रति गहरी रुचि थी। विश्वासघाती को अंगभंग नाक, कान काटने की सजा का प्रचलन था।

राज्य का सारा आर्थिक ढांचा गो व कृर्षि पर निर्भर था। राजकोष में राजकर के रूप में कृर्षि उपज का छटा हिस्सा तथा उद्योगों का दसवां हिस्सा दिया जाता था। कृषि के अलावा गौचर पनघट व जंगल के लिए भूमि छोड़ी जाती थी। जिस पर सारे गाँव का अधिकार रहता था। कतिपय क्षेत्रों में नदी घाटी में गाड़–गधेरों से गूँलों द्वारा सिंचाई होती थी। परन्तु अधिकांश भूमि ऊसर थी।

खेती के अलावा छोटे–छोटे उद्योग दस्तकारी के काम जैसे हथियार बनाना, ऊनी वस्त्र घराट, लकड़ी के कारीगर, चमड़े का काम, भवन निर्माण मूर्ति निर्माण, मन्दिर निर्माण, कत्यूर घाटी के मन्दिर सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में आज भी विश्वप्रसिद्ध हैं और उनमें प्रतिष्ठित मूर्तियों को देखकर ही उस युग की कला का मूल्यांकन किया जा सकता है।

जागेश्वर, वैजनाथ, द्वाराहाट, कटारमल, आदिब्रदी पाण्डुकेशर आदि स्थानों में प्रतिष्ठित देवप्रतिमायें व मन्दिर दर्शनीय व प्रशंसनीय हैं। इनका आकलन कत्यूर काल में ही हुआ था।

तब संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी। वर्ण व्यवस्था लागू थी। राजा, विद्वानों ब्राहमणों व अतिथियों को सत्कार देता था।

शिक्षा उनदिनों गुरुकुलों, मन्दिरों, आश्रमों या घरों पर दी जाती थी। उच्च शिक्षा के लिए काशी व नालन्दा भेजा जाता था। राजपरिवार के लिए शिक्षा व्यवस्था अलग से थी। राजा विद्वान व शिक्षित होता था।

दूध, दूध के पदार्थ, गुड़, शहद, सरसों का तेल, गेहूँ, चावल, उड़द, चना, जौ जंगली वनस्पतियाँ, हिरण, बकरी व मछली का माँस मुख्य आहार थे। भोजन से पूर्व स्नान व पूजा आवश्यक थी।

सिले कपड़ों का रिवाज नहीं के बराबर था। राज परिवार के अलावा आम नागरिक बिना सिले कपड़ों का उपयोग ऊनी या सूती ओढ़नी घुटनों

तक धोती या लंगेठा, दुपट्टा फैज्जियों के लिए पैजामा, मिरगई, कमरबाँध जिस पर तलवार होती थी। का प्रचलन था।

राजपरिवार की महिलाएँ रेशमी कढ़ी हुई ओढ़नी सर से पीछे की तरफ लटकती रहती थी। २२ पाटों का घाघरा, अंगीया, पिछोड़ा गले में हार अँगूठिया नथ, चूड़ामणि, बिन्दी सिन्दूर तथा आम महिलाएं बाठे की घाघरी, गांती, आंगड़ी पहनती थी। सामर्थानुसार सोना, चाँदी खपरिया पीतल के आभूषणों को भी पहनती थी।

अस्त्र–शस्त्र में तलवार, ढाल, खुंखरी, खांडा, छूरी, लमछड़, भाले, कटारी, धनुष बाण, कमान, भुजाली ख्योंतार, गदा, भक्ति मूल व पत्थर होते थे।

भाषा–विक्रम तीसरी सदी तक सभी आलेख पाली भाषा में मिलते हैं। अगली शताब्दी में तद्भव तथा तत्सम शब्दों की ओर झुकाव होने से संस्कृत भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। बाद के आलेख संस्कृत में मिलते हैं। वर्तमान पहाड़ी गढ़वाली भाषा का शनैः–शनै विकास, नवी सदी से चौदहवीं सदी तक होता रहा।

मापतोल–भूमि नाप १२ मुट्ठी = १ माड़ा, ४ माड़ा = १ नाली, १६ नाली = १ डोण, २० डोण = १ खारी, २० खारी = १ भालीवाहन, २ माड़ा = १ बैकर, आधा माड़ा १ तामी २ तामी = १ माड़ा या कूड़ी, २ कूड़ी का १ पाथा, १६ पाथे = १ डोड, २० डोण की १ खार, हिसाब–किताव बीसियों में होता था। यानि कि ५ बीसी = १००।

राज्य करों को उन दिनों निपत कहते थे निपतें श्रम, अन्न और द्रव्य के रूप में वसूल होती थी। उपज का १/६ भाग वसूला जाता जिसका चौथाई भाग राजदरवार में जाता। शेष वसूलने आदि व्यवस्था में खर्च होता था। श्रम के बदले दिये गये निपत को वेट नाम से पुकारा जाता था। जो राज–भवन निर्माण, मन्दिर, मार्गपुल, धर्मशालाऐं बनाने व कृषि कार्य के लिए भी किया जाता था।

निपत (करों) की वसूली विषयों (जनपदों) को कोट, कोटों को गरखों, गरखों को घर, थोक और अन्त में गाँवों में बाँटकर की जाती थोक की

जिम्मेदारी होती कि थोकपति (ग्राम प्रधान) अपने–अपने हिस्से की सेवायें राजकर वसूल कर, राजा महाराजा के माध्यम से केन्द्रीय कोष तक पहुंचायें। उच्चकुल के ब्राहमणों, राजपरिजनों से राजकर नहीं लिया जाता था। वे अवध्य थे। उनसे मजदूरी, बोझ ढोनें आदि का काम नहीं लिया जाता था।

हिमालय के इन आचलों में राजतन्त्र का आधार सैनिक शासन नहीं था। उसकी बुनियाद हिन्दू राजतन्त्रों की पुरानी जमींदारी पद्धतियां बनी रहीं। यह व्यवस्था सामन्त–शाही पर कायम थी। राजा के प्रमुख समान्तों में जौकारी (राजपरिवार सें सम्बन्धित) तथा श्यौकारी (सेवा करने वाले) दो प्रकार के वर्ग थे। जौकारी छपल्ल जनेऊ तथा श्यौकारी उपल्ला की जनेऊ धारण करते थे।

मालों, थोक, घर के मुखियों का वर्चस्व स्वीकार करने वाला ढाँचा कत्यूर काल से चन्द और अंग्रेजों की शासन व्यवस्था तक पधानचारी थोकदारी के रूप में मान्य रहा।

शुभ–अशुभ खबरें, लड़ाई–भिड़ाई, दण्ड, सजा आदि की खबरें राज्य भर में कानों कान फैल जाती थी। विशेष राजाज्ञायें शीलबन्द कर दूतों के हाथों, मातहत अधिकारियों तक भेजी जाती। वे धात, गुहार, डुगडुगी द्वारा इलाके को सूचित करा देते।

कानूनों या राजाज्ञाओं का पालन राजदण्ड के भय से नहीं, बल्कि कौटम्बिक विश्वास जैसी भावना से नागरिक स्वयं करते चाहे सीमान्त चौकियों की सुरक्षा हो या कर वसूली या अन्य राज्य आदेशों का अनुपालन स्वतः होता था। पुराने जमाने से चले आ रहे दिव्य परम्परा के अन्तर्गत आने वालों अपराधों को ईश्वरीय अपराध माना जाता इनमें परस्त्री गमन, कुमार कुमारी व्यभिचार, मिथ्या, आरोप, मादक पदार्थ सेवन, चोरी डकैती, हत्या, धर्मत्याग, राजद्रोह आदि आते थे। राजा दिव्य न्याय के अधीन देशनिकाला, कठोर कारावास अंगभंग या मृत्युदंड की सजा देता था।

उस युग में नियमित सेना रखने का प्रचलन नहीं था। सेनापतियों और सेनानायकों के अलावा युद्ध के समय राजा योद्धाओं (भड़ों) को गावों से कोटपतियों द्वारा आमन्त्रित करता जो अपने साथ बड़े–बड़े पहलावानों वीरों को लाते थे राजभक्ति से अभिभूत होकर अपने प्राणों की परवाह किये बिना पूरी शक्ति से लड़ते। उनको जागीरें दी जाती। अन्य पुरुस्कार भी दिये जाते थे।

इस प्रकार कत्यूरी सेना में ६ लाख वीरों का उल्लेख मिलता है। जिन्होंने कई ऐतिहासकि युद्धों में विजय पायी थी। परिवारिक पुरोहित ही जेतिषी तथा वैद्य होते थे। जो दैहिक, दैविक व भौतिक रोगों का निवारण, झाड़–फूक, मन्त्र–तन्त्र, अगद, जागर, गण्डे, तावीज और जड़ी–बूटी आदि से करते थे।

चेचक, मलेरिया ताउन हैजा से प्रतिवर्ष हजारों लोग मौत के घाट पहुंचते थे। परिजन उनको तड़फता भगवान आसरे छोड़कर जंगलों में भाग जाते थे। दस्त, क्षय, संग्रहीणी, आँत्रशोध, श्वास, वायुरोग गठिया, चर्मरोग सर्वत्र होते रहते थे।

नरभक्षी बाघ, चीते और शेर साँप, विच्छु, भालू हाथी, भेड़ियों का उत्पात उस युग में सदा बना रहता था।

पेड़ों से गिरकर नदी नालों में बहकर भ्योल (ऊँचे डांडों) से गिरकर लुढ़कती शिलाओं से दबकर हिमानी धारों में बहकर अकाल, अतिवृष्टि, महामारी और आक्रान्ताओं के हाथों वे मौत मरना इस युग की नियति सी बन गई थी।

इन सब प्राकृतिक आपदाओं से अपने परिजनों की विछोह ज्वाला ने पर्वतवासियों को जहाँ अन्धविश्वासी रुढ़िवादी और धर्म भीरू बना दिया था। वहीं श्रद्धा व भक्ति की गहरी आस्थायें भी इनमें भर दी थीं। अपने पूर्वजों से प्रदत प्राचीन मान्यताओं के अनुपालन में इन्हें आभास होता था कि कोई अदृश्य दैवी शक्ति प्रतिक्षण उनके हर कार्य को देख रही है। इसीलिए वे सत्यवादी होते थे। धर्म की सौगन्ध लेकर झूठ नहीं बोलते थे। यही परम्परा आज भी हमारे न्यायालयों में प्रचलित हैं घरों में ताले नहीं लगते थे।

इमानदारी, सच्चाई, राज भक्ति को परमधर्म तथा छल, कपट व्यभिचार ठगी को महान पाप माना जाता था। उनका दृढ़ विश्वास था कि पाप व पुण्य का उनके वंशजों को अवश्य प्रतिफल भुगतना पड़ेगा।

लेकिन सभी लोग दूध के धुले नहीं होते थे परन्तु उनका प्रतिशत बहुत कम होता था।

धार्मिक अन्धविश्वासी कष्ट, सहिष्णुता मितव्ययी, भाग्यवादी अपने काम में व्यस्त, वाह्य संसार से उदासीन और राजा के प्रति वफादार रही थी उस समय की प्रजा की मनोदशा।

जागर एक पूजा विधि

मानव शरीर में देवत्व के अवतरण को कुमाँऊ भाषा में जागेरी (पूजा विशेष) नाम से पुकारा जाता है। इसमें नरसिंह, पाण्डव से लेकर मध्यकालीन, राजवंशी, भूतवीशी और ग्राम देवता, भूमि देवताओं का पूजा विधान किया जाता है।

जागर में हुड़कियां, ढोल, दामू, नगारे, थाली, वाद्य यंत्र काम में लाये जाते हैं। इनमें अवतरित होने वाले देवता दो प्रकार के होते थे। राजाड़ी (राजवीजी) दूसरा भूताङ्गी (भूतवंशी) राजाङ्गी देवता, अपने जीवन काल में पराक्रम शौर्य तथा वीरता पूर्ण लक्ष्यों की सिद्धि के पथ पर स्वाभाविक मृत्यु से मरे होते थे। भूताङ्गी देवता प्राकृतिक मृत्यु से न मरकर–षडयंत्रों द्वारा आत्म हत्या, युद्ध में, जल में, पहाड़ों से गिरकर, सांप काटने से जलकर या विषपान करने से मरे होते हैं।

जागर में आत्मा का अवतरण होता है। जिसके देह (शरीर) में अवतरण (अवतार होता है)। वह मन्दिर का प्रतीक मोन लिया जाता है। इसीलिए जगरिये पूर्व ऐतिहासिक घटनाओं की याद दिलाने पर देह में जो स्फुरण होता है उसी को हिलना या अवतार या देवता नाचना (आना) कहते हैं। यह पुरुष महिलाओं दोनों में होता है। देवता नाचता है परिजन उसकी पूजा करते हैं। वह आशीष वचन कहकर मानव पिण्ड से उतर जाता है।

कत्यूरी जागरों (जतारों) की अपनी अलग ही शान है। इन जागरों में राजवंशी कत्यूरों (राजा, रानियों, सेवकों आदि में देवत्व की भावना की प्रतिष्ठा की जाती है। इनकी कई प्रकार से जगरिये, जागरवार्ता प्रारम्भ करते हैं। परन्तु हर जागरी में सर्वप्रथम कत्यूरी वंशावली अवश्य आयी जाती है। इसे वंशवारि कहते हैं।

सांझ होते ही वाहर पटांगड़ में कालीनें, विछाई जाती है। तोषक तकिये सजाये जाते हैं। कत्यूरी राजाओं के हथियार छुरियाँ, खड्ग, कयरि, ढाल, तलवार, ख्यौंतार, सजाकर रखे जाते हैं। पान वीड़ा कस्तूरी, लौंग इलायची, तथा चावलों के थाल के थाल भरे जाते हैं। पानस में पंचमुखी दीपक प्रज्वलित

किये जाते हैं खली के माध्य में अग्नि प्रदीप की जाती है। इसको धूनी कहते हैं।

दोनों आलें लखनपुर व रणचूलीघाट की यथा स्थान अपने धुनातीर दिवानों के साथ विराजते हैं। जगरिया (दास) पहाड़ी भाषा में स्तुति पढ़ता है।

जागर (जागरण) दैवी शक्तियों का मानवीकरण कर उनको जगाने को कहा जाता है। इनके पीछे मूल सोचं यही है कि पैदा होने से मरने के बीच ही जीवन नहीं है वरन मरने के बाद भी उसकी सत्ता है। परन्तु मृत्यु पश्चात कही जीते हैं जिनकी तृष्णा पूरी नहीं होती है। मरने के बाद भी उनकी तृष्णा नहीं मरती है। कारण शरीर ही मृतयोनी में चला जाता है। लोकहित में वे मरकर भी नहीं मरते हैं। उनके जीवन का शेष भोग उनके सगे संबंधियों को चुकाना पड़ता है। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर जागरों का प्रारम्भ हुआ होगा। मृत आत्मा, पशुधन, हानि रोग, शोक, उच्चारण मोहित या स्वपनों के माध्यम से अपने संगे सम्बन्धियों को अपनी स्थिति का आभास दिलाते हैं।

इन जागरों के जरिये अवतरित होने वाले ऐतिहासिक महत्व के मृत आत्मा कौरव, पाण्डव, कत्यूर, हूण, सेम, गोरखनाथ, ग्वेल, कलविश्ट, आदि ग्राम देवता के रूप में स्थापित व पूजित होते हैं।

जागरों के माध्यम से उत्तराखण्ड की ७५प्रतिशत जनसंख्या का किसी न किसी रूप में कत्यूरों, जीया और उनके दीवानों को पूजा जाना उनके प्रति जहां विशेष श्रद्धा को प्रदर्शित करता है वहीं उनकी अनुपस्थिती में भी उनसे सुख समृद्धि की प्रार्थना की जाती है और इसके आशातीत सुफल भी मिलते हैं।

कत्यूर काल की नारी

कत्यूरी नरेशों ने अपने सर्वप्रथम राजाज्ञा (ताम्रशासन) में नारी के समानार्थ देवी का दर्जा देकर उनको पूज्यनीय बना दिया। ललित सूरदेव के पाण्डुकेश्वर वाले ताम्र–पत्र में लिखा है "स तत्पादानु ध्यातो राज्ञी महादेवी श्री नायू तस्य पुत्रत्पादान– ध्यातों रानी श्री वेग देवी तस्यात उत्पन्न परमा...." (उनके तनय....रानी नाथु देवी से उत्पन्न परम माहेश्वर श्रीमान ईष्टगणदेव थे उनके पुत्र रानी महादेवी, लट्टीदेवी वेग देवी से उत्पन्न....) भूदेव के बागेश्वर वाले शिलालेख में राज्ञी महादेवी, कल्याणी देवी, तथा महादेवी पति परायणा पत्नी रानी सष्यनरा देवी का उल्लेख है। इनके ही पाण्डुकेश्वर वाले ताम्रशासन में सिन्धु देवी, विशाला देवी आदि नामान्त में देवी शब्द का प्रथम बार आलेख मिलता है।

इससे पहले देवी शब्द नहीं जोड़ा जाता था जैसे इलाभारती, ब्रहमाणी, पार्वती, अनुसूईया, सीता, सावित्री आदि–२ नारी को देवी बनाकर कत्यूरी नरेशों ने "यत्रु नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता," की युक्ति को साकार रूप देकर ईष्टदेवी नन्दा (पार्वती) को नन्दा देवी घोषित कर देवी शब्द को अमरत्व प्रदान कर दिया नारी समाज के लिए यह सर्वोच्च राज सम्मान था। तभी से आज तक नारियों के नामान्त में देवी शब्द लगता चला आ रहा है। कत्यूरों के प्रति अगाद श्रद्धा का एक कारण यह भी था।

कत्यूरों ने अपने ताम्र लेखों शिला लेखों, आदि में अपने नाम से पहले अपने दादी, माता का नाम लिखवाकर नारी को विशेष प्रतिष्ठित दर्जा दिया था। राजकाल में नरेश का निर्णय सर्वोपरि होता था। परन्तु वे अपनी अमात्य महाराजा, राजा, राजपुत्र, सामन्तों, राजगुरुओं, धर्माधिकारियों, परिजनों तथा पटरानियों की सम्मति की भी अवहेलना नहीं करते थे। सीधे हस्तक्षेप तो राजरानियों का राजकाज में नहीं होता था परन्तु गोपनीय परामर्श में नारियों (पटरानियों) से विचार विमर्श अवश्य होता था। दरबार में रानी का स्थान सुरक्षित होता था। कई बार कुछ विभागों का संचालन भी वे करती थी। युद्ध में साथ–साथ रण संचालन के उदाहरण भी मिलते हैं।

चीनी यात्री ह्वेनस्वांग कत्यूरी राज्यभ्रमण यात्रा वृतान्त में लिखते हैं

कि नारियां पति परायण होती थी। उनका विवाह एक ही बार होता था। पर्दाप्रथा नहीं थी। राजरानियाँ, राजसभा व राजदरबार में जाया करती थी। भोजन से पूर्व स्नान करती थी, तथा झूठा भोजन किसी को नहीं देतीथी। प्याज, लहसुन का प्रयोग नहीं होता था। भोजन सादा होता था। नारी के कारण ही परिवार प्रतिश्ठित माना जाता था। परिवार में नारी सर्वेसर्वा होती थी। धर्माचरण करती थी। बच्चों का पालन–पोषण उनकी दीक्षा, ग्रहसंस्कार, परिवार के सदस्यों की देख–रेख सेवा, सुश्रुषा, भोजन व्यवस्था, अतिथि सत्कार, गोशाला कृषि सभी प्रकार के आय–व्यय, कृषि तथा धार्मिक कर्तव्य नारियों को सम्भालने हो थे।

उस युग में नारी तप, त्याग व स्नेह की त्रिवेणी बन गयी थी। उनकी दिनचर्या, परिवार तक ही सीमित न रहकर समाज की कार्य में रुचि लेना, सेवार्थ समय देना, दान–दक्षिणा देना, अपना परम कर्तव्य मानती थी।

बहुपत्नी प्रथा थी, फिर भी बड़ी बहुरानी की आज्ञा का पालन सभी करते थे। विवाह की चार विधियाँ थी। :–

१. वैदिक विवाह : राज परिवार तथा सम्भ्रान्त परिवारों में यही विधि प्रचलित थी।

२. गन्धर्व विवाह : प्रणय (प्रेमविवाह) इसका सभी वर्गों में प्रचलन था। जैसे :– राजुला, मालु साही आदि।

३. राक्षस विवाह : असहमति, लड़कर, बलपूर्वक, जबरन विवाह भी उस युग में प्रचलित थे।

४. असुरी विवाह : धन देकर (पैसिंया ब्याह) ढांटी (दूसरे की पत्नी से ब्याह) यह प्रचलन विशेशकर निम्न वर्गों में था।

पत्नी त्याग का भी रिवाज था। आयी गयी नारी दूसरा विवाह करने में स्वतंत्र थी। सम्पति पर नारी को हक उन दिनों नहीं मिलता था। सिर्फ पुत्रों को वह भी विवाहित के पुत्रों को पैत्रिक सम्पति मिलती थी। पुत्रियों के लिए दहेज प्रथा थी।

पुत्र प्राप्ति के लिए स्त्रियाँ कठोर तप, व्रत, धर्मानुष्ठान व तीर्थ यात्रियों दीपक आदि द्वारा ईष्ट को मनाती थी। चरित्र दोष सिद्ध होने पर कठोर दण्ड दिया जाता था। उन दिनों संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी। अपने जाति वर्ग व वर्ण के परिवारों के साथ ही वैवाहिक सम्बन्ध होते थें किन्तु डांटी, रखैल, दासी, छयोडी घसकटी पर ये नियम लागू नहीं होते थे।

उच्च वर्ग में कन्यादान की प्रथ थी। साधारण लोग टीका विवाह (पैठाणियाँ) भी कर लेते थे। कुछ परिवारों में बड़ी लड़की को देवकन्या मानकर मन्दिर में चढ़ दिया जाता था। जो नेपाल में अब तक प्रचलित है। बाल–विवाह का भी प्रचलन था। कुछ नारियां, सोतों, सासों या परिवार वालों के कोप भाजन या अन्याय से तंग आकर सन्यासिनी (जोगिनी) बन जाती थी, तथा कष्टमय जीवन व्यतीत करती थी। विधवा विवाह, देवर भाभी विवाह, टेकुआ की प्रथा साधारण वर्ग में थी, पति प्रेम में नारियां सती भी होती थी। विषपान के उदाहरण भी मिलते हैं।

राजपरिवार की नारियां रेशमी कढ़ा हुआ, माथे की ओढ़नी जो सर से पीछे की तरफ एड़ी तक लटकती रहती थी। २२ (बाईस) पाटों का घाघरा अंगिया, पिछोड़ा, स्वर्णाभूषण, गले का हार, नथ, अंगूठियां, चूड़ामणि आदि आभूषण पहनती थी। आम परिवार की बहुऐं गाढ़े का घाघरा, गाती आंगढ़ी पहनती थी। सोना, चाँदी, पीतल, खपरिया के जेवर का उनमें प्रचलन था।

कत्यूर युग की राजपरिवार के कतिपय रानियों द्वारा युद्ध वृतान्त भी उपलब्ध हुए हैं। लखनपुर नरेश पृथ्वीपाल की पटरानी जिया के नेतृतव में नौ लाख कत्यूरी वीरों की सेना ने रानी बाग में सात लाख तुर्क यवनों के साथ भयंकर युद्ध किया था। अपनी वीरता, रणकौशल व युद्ध संचालन से यवनों को पहाड़ों में प्रवेश करने से रोका ही नहीं। मुसलिम इतिहासकार इब्बूना के अनुसार यवनों की सारी सेना को मौत के घाट उतार दिया था। इसमें जिया को अपना भी बलिदान देना पड़ा था परन्तु उन्होंने अपनी मातृभूमि पर आक्रमणकारियों को पाँव नहीं रखने दिया। रानीबाग में जिया की चितास्थली की आज भी पूजा होती है। इस राष्ट्र प्रेम ने जिया की वीरता और बलिदान ने जिया को इतिहास में अमर कर दिया है। ऐसी वीरांगनायें कत्यूरी युग में हुयी हैं। जिनके नाम से सारा उत्तरांचल गर्वित होता है।

सन् १४२३–३६ के मध्य जब कत्यूरी नरेश विरमदेव दसौट (कर) पूजने भावर गये थे। उनकी अनुपस्थिति में चन्द्र सेना ने लखनपुर किले पर आक्रमण कर दिया उस समय विरम देव की पुत्रियों ने उनके साथ युद्ध कर उन्हें परास्त कर भगा दिया इस प्रकार नारी की वीरता की अनेक कहानियां प्रचलित हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकार डा० शिवप्रसाद डबराल अपने शोध ग्रन्थ में लिखते हैं कि कत्यूर काल की नारियों की भारतीय संस्कृति को जो सबसे बड़ी सोगात थी वह थी ऐपण " ऐपण का धर्मिक रूप कत्यूर युग में प्रारम्भ हुआ। धरातल, दिवाल, चौकी, आँगन, सीढ़ियों आदि को गोवर गेरु, मिट्टी आदि से पोत कर कलात्मक ढंग से चावल का विस्वार बनाकर ऐपण बनाना प्रारम्भ हुआ। यही ऐपण उत्तराखण्ड की सभ्यता और संस्कृति की पहचान बन गयी है। आज भी इन ऐपणों के बाद ही कोई शुभ कार्य प्रारम्भ होता है। उस युग में नारी श्रद्धावान, अन्धविश्वासी धर्मभीरु, व सीधी–साधी होती थी। शिक्षा का प्रचार नहीं के बराबर था। ग्राम देवी देवता, भूत–प्रेत, आचरी–चांचरी के जंजाल में अधिकांश नारियां ग्रसित रहती थी। गणतुओं, पंडों, पुजारियों द्वारा भूत–भ्रेतों की आड़–फूंक प्रचलित थी।

कत्यूर युग के प्रारम्भिक दिनों में नारी जहां श्रद्धा एवं परिवार में पूज्यनीय थी। वही राज्य के अन्तिम दिनों में नारी में जागृत यानी प्रारम्भ हो गयी थी। राजूला और जीया इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

बोली-भाषा व लिपि

विक्रम पूर्व तीसरी शताब्दी तक के अभिलेखों से ज्ञात होता है उन दिनों इन क्षेत्रों में वाली व प्राकृतिक भाषा का प्रयोग होता था। इसके बाद अगली शताब्दियों में तद्भव व तत्सम् शब्दों की ओर झुकाव बढ़ने से संस्कृत भाषा का प्रादुर्भाव होने लगा तब लिपि कुटिल थी।

महर्षि पाणिंअलि ने मुद्रा राक्षस को संस्कृत में लिखा था ब्राहमी उत्तर ब्राहमी, पुस्तिव ब्राहमी का प्रयोग भी होता रहा।

भाषा : भाषा सार्थक ध्वनी प्रतीकों की वह प्रणाली है, जिनके माध्यम से मनुष्य परस्पर विचारों और भावों का आदान–प्रदान करता है।

बोली : देशकाल भेद से एक ही भाषा कई बोलियों का रूप ले सकती है। प्रत्येक भाषा–भौगोलिक व ऐतिहासिक कारणों से स्थानीयकृत होती रहती है। जिस सीमा पर एक भाषा बोली भिन्न होने लगती है। वहीं से दूसरी भाषा की सीमा प्रारम्भ होती है।

ऐतिहासिक सीमा : अनेक विद्धानों का ऐसा भी अनुमान है कि उत्तरांचल में ईसा पूर्व ३ हजार वर्षों के आसपास संस्कृत बोली जाती थी। इसके उपरांत अवभ्रंस के फलस्वरूप १५०० ई०पू० में पांचवी शताब्दी तक प्राकृतिक भाषा की सीमा मानी जाती है। उसके बाद आधुनिक भाषाओं का युग प्रारम्भ होता है। संसार की हरभाषा का पूर्ववर्ती रूप उसके आधुनिक रूप से भिन्न था। आज हिन्दी भाषा जिन रूपों में बोली जाती है। ५०० वर्ष पूर्व उसका अलग रुप था। पाली व प्राकृतिक भाषा का अपभ्रंस कालक्रम से परिवर्तित होकर हिन्दी भाषा बनती गयी। भाषा बोली परिवर्तनशील है।

वर्तमान कुमाँऊनी व गढ़वाली भाषा की शब्दावली, आर्योत्तर भाषा, कुषाण, खस, किरात, हूण, तिब्बती, तुर्की, प्राकृतपाली, अंग्रेजी, उूर्द का मिश्रण का प्रतिफल है हिन्दी के ही समान इस भाषा में भी शौर सेनी का अपभ्रंश है।

खस, कोल, किरात आदि यहाँ के मूल निवासी थे उनकी बोली का बहुत कुछ प्रभाव आज तक विद्यमान है।

कुमाँऊ–गढ़वाली, भाषा के शब्द समूहों के पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है–

१. भारतीय आर्य भाषा के शब्द
२. देशी शब्द
३. देशज शब्द
४. स्थानीय शब्द
५. विदेशी शब्द

१. भारतीय आर्य भाषा के शब्द : भारतीय भाषा के शब्दों के अन्तर्गत दो प्रकार के शब्द समूह शामिल होते हैं। पहले वे शब्द जो वैदिक काल से बिना परिवर्तन के अपना लिये गये हैं जैसे–धर्म, कर्म, कुशल, ज्ञान, परमात्मा, दुःख, सुख, पाप, पुण्य आदि। दूसरे वे वैदिक शब्द हैं, जो तद्भव से यानि पाली, प्राकृतिक और अपभ्रंस की यात्रा करते हुए वर्तमान तक आये हुए हैं।

जैसे – संस्कृत में धर्म, प्राकृत में धम्य, कुमाँऊ में धाय संस्कृत में नृत्य प्राकृत में पाण्य, कुमाँऊ में नान्च आदि।

२. देशी शब्द : उन शब्दों समूहों को माना गया है, जो यहाँ के आदिवासियों की भाषा और बोलियों से वैदिक संस्कृत प्राकृत तथा भारतीय भाषाओं में समय–समय पर आते रहे हैं।

जैसे : घोटक, मयूर, द्रविण शब्द है हिन्दी में घोड़ा मोर तथा कुमाँयू में ध्वड़ मोर।

हिन्दी से – भाई, मिठाई बालू।
ब्रजी से – अतर, नौणि।
अवधी से – कुकुट, हाट पिठ (धान की भूसी)
राजस्थानी से – पातर, मुण्डी।
पंजाब से – हिटण, खाण, आलण (विस्वार)।
मराठी से – हड़ताल
बंगाली से – गोरुं, भात।
आर्योत्तर देशों से आये शब्द – द्रविण से उखल बुड़–बाड़ी, च्यल आदि।

३. देशज शब्द : वे शब्द हैं जो कुमाँऊनी के सम्पर्क में आने से जन सामान्य की भाषा में चल पड़े–

जैसे – सलवल, दडवड़, नरै, रणमणि आदि।

४. स्थानीय शब्द : इनसे मतलब ग्रामिणों की नित्य प्रति की बोलचाल के शब्द से है।

जैसे – ठेकि, रौड़ि, छिलुका, क्वीड़ कहाँण आदि।

५. विदेशी शब्द : इनसे मतलब मुसलमान, तुर्की, अंग्रेजों के सम्पर्क में आने से जो शब्द अपनाये गये हैं जैसे –

तुर्की से – गलीचा, भादुर।
अरबी से – आदत, आदिम, कसूर, माफ।
फारसी से – शरम, करार, दस्तकत दरखावस्त आदि।
अंग्रेजी से – पोस्ट कार्ड, बुरुश, पास फेल आदि।
पुर्तगाली से – बटन, आरपिन, परात, कन्टर आदि।
कुमाँऊनी, गढ़वाली भाषा में शब्द समूहों का अनुपात :–
तत्सम शब्द – ५%
तद्भव शब्द – ६०%
देशी शब्द – १०%
देशज शब्द – १०%
स्थानीय शब्द – १०%
विदेशी शब्द – ५%

वर्तमान कुमाँऊ, गढ़वाली बोली का प्रचलन ६वीं, १०वीं शदी से प्रारम्भ होकर १३वीं से १५वीं शदी तक पूर्ण विकसित हो चुका था।

लखनपुर

कत्यूरी राजधानी लखनपुर – तारीखें बदल गयी, समय बदल गया लेकिन लखनपुर की मांटी जिसने कत्यूर युग की निर्मल धारा का इतिहास गूढ़ा और देखा उनका उत्थान व पतन आज भी साक्षी है, अपने अतीत के वैभव का। वहाँ पहुँचते ही सुखानुभूति का सहज स्पन्दन स्वतः होने लगता है। शान्तवातावरण, नयनाभिराम, दृश्यालियां, भक्त भोगी ही अनुभव कर सकता हैं

यों तो कश्मीर, हिमांचल प्रदेश, रामनगर, अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ आदि अनेक स्थानों में लखनपुर नाम से नगर किले तथा ऐतिहासिक स्थान है। आइये हम अल्मोड़ा जनपद के गेवाड़ घाटी में रामगंगातट पर स्थित वैराठ वाले लखनपुर चलते हैं। गनाई जौरासी मार्ग पर १०वें किलोमीटर पर ४००० फुट की ऊँचाई पर २६.५३'.८" अक्षांस, ७६.२३'.३८" देशान्तर में एक पर्वत शिखर पर थी। कत्यूरी राजधानी लखनपुर। अंग्रेज इतिहास का ऐसकिनसन हिमालय डिस्ट्रीकल्स के तीसरे भाग के प्रथम खण्ड पर पृष्ठ २२६ पर लिखते हैं–

Some two miles from Ganai are the traditional Rimans of what is now known as Lakhanpur or Bairat and which is Repposed to have been of the Capitals of the Earlier Kattiyuri Raja in Kumaon.

चीनी यात्री कनिघम ने ब्रहमपुर की कत्यूरी राजधानी वैराठपट्टनम् (वर्तमान लखनपुर) को माना है। अपने यात्रा वृतान्त में लिखते हें कि यहाँ बौद्ध व ब्राहमण साथ–साथ रहते थें। कुछ विद्याध्यनी शेष खेती करते थें ह्वेनस्वान ने इसको माडावार से (हरिद्वार से) ८० मी० उत्तर में लिखा है। वे आगे लिखते हैं रामगंगा के दाहिने तट पर वैराठपट्टनम किला स्थित है। उस काल में रामगंगा को रथस्या कहते थे।

एटकिन्सन प्रमाणित करते हैं कि लखनपुर के कत्यूरी की राजाओं की वंशावली में आसन्तिदेव की नवीं पीढ़ी से सारंगदेव का नाम है। और सारंगदेव ने सन् १४२० में टमाठौन के पास अपने कुलदेवी का मन्दिर बनाकर उस पर अपना नाम खुदवाया था। जिनकी राजधानी रामगंगा तट पर लखनपुर में थी।

डा० शिवप्रसाद डबराल ने उत्तराखंड के पुरातत्व स्थानों की खोज में द्वाराहाट आदि का वर्णन करते हुए कत्यूरी राजधानी लखनपुर का वर्णन कर उसके सम्बन्ध में लिखा है–भग्नावत्रेगनाई के पास लखनपुर में पुराने मंदिर व किले कत्यूरी राजधानी के हैं।

डा० रणवीर सिंह चौहान गढ़वाल विश्वविद्यालय के प्रवक्ता ने अपने शोध ग्रन्थ में सप्रमाण लखनपुर को कत्यूरी राजधानी सिद्ध किया है।

राजधानी का निर्माण : छटी शताब्दी के आसपास जब कत्यूर राजधानी जोशीमठ में थी। उन्हीं दिनों प्रशासनिक सुविधाओं के लिए एक उपराजधानी कि किसी उपयुक्त केन्द्रीय स्थान पर आवश्यकता थी। बहुत ढूंड खोज के बाद तत्कालीन नाम वैराठपट्टनम (वर्तमान लखनपुर) को राजधानी के लिए चुना गया। क्योंकि यहां से पूरे राज्य नियंत्रण रखना जोशीमठ के बजाय सरल था। दानपुर ४५ मील ५ घंटे का, गंगोत्री ६५ मील ८ घंटे का, वारामण्डल ६० मील नौ घंटे का, कण्डाकोट ३० मील ४ घंटे का, चाँदपुर ५० मील ६ घंटे का श्रीनगर ६५ मील ८ घंटे का ढिकुलीभावर ८० मील ६ घंटे का, जोशीमठ १५ घंटे का अश्वारोही मार्ग था। डोटी १०० मील १४ घंटे का मार्ग था। उसके अलावा उपजाऊ क्षेत्र था। शीत प्रधान न होने से साल भार राजकाज यहां से सुचारू रूप से चल सकता था। सबसे बड़ा कारण मैदानी भू–भाग से राजनयिक सम्बन्ध स्थापित करना तथा उस भू–भाग से आने वाले आक्रमणों को रोकने के लिए भी यह उपयोगी स्थान था। जोशीमठ राजधानी को राजनैतिक व धार्मिक कारणों से भी देर सवेर हस्तान्तरित होना था मात्र उपयुक्त समय का इन्तजार था। क्योंकि यहाँ हिमानियों का खतरा तथा तिब्बती बौद्धों के बढ़ते दबाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता था।

इन्हीं बहुत से विन्दुओं को मध्यनजर रखते हुए लखनपुर को उपराजधानी के लिए चुना गया। किस्सा अब तक लोगों को कंठस्थ है। "लखनपुर का पाटायार पट मैदान करनी" प्रथम पर्वत शिखर को काटकर ६० x १०० फुट का एक समतल मैदान चोटी के सिर पर बनाया गया।

राजभवन : इस समतल मैदान को एक पारकोटे से घेर कर जिसमें प्रवेश द्वार पूर्व को था। एक राजभवन का निर्माण प्रारम्भ हुआ। दिवारें एक

मीटर मोटी (सांगनी) और अनगढ़ पत्थरों की थी। तिमंजिला भवन उत्तराभिमुख राजदरवार (सिहांसन) अगल–बगल स्वागत कक्ष, विश्रामकक्ष थे। राज्याधिकारियों के कार्यालय, कोषागार, शास्त्रागर साथ–साथ थे। एक अन्तःपुर था जहां से गुप्त मार्ग अज्ञात स्थान के लिए थे।

खुदाई से हमें ऐसे मार्ग मिले, भूमिगत कमरे भी थे। स्नानागार, रसोईघर, उनकी नालियां अभी मौजूद हैं, बीच में खुला बड़ा आंगन है जहां खुला दरवार लगता था। कुछ कमरे १२ x १८ फुट कुछ १० x १० फुट के आकार थे। पूरे राजभवन में ३६ कमरे ३२ द्वार बीसियों झरोखे, दक्षिण दिशा में छज्जे अन्दर से बाहर का सारा दृश्य दीखता था परन्तु बाहर का आदमी अन्दर की तरफ नहीं देख पता था।। "तिपुरिया महल न्यारो रणि को रणयासा"।

इस मुख्य परिसर से सटे चारों तरफ ४८ कमरे बने थे। जो आकार में छोटे थे। ये सम्भवतः सौतियां राणियों, राजपुत्रों या कारिन्दों और सेवकों के लिए तथा सुरक्षा कर्मियों के लिए बनाये गये होंगे। यहां खुदाई में चूड़ियों के टुकड़े मिट्टी के बरतनों के टुकड़े, मूर्तियां, लोहे के टुकड़े मिले हैं।

सोरंग (गुप्तमार्ग) : मुख्यभवन के भूमिगत कमरों से सोरंग (गुप्तमार्ग) बने थे। इनका बाह्य निकास दो दिशाओं को था। प्रथम छिपीली कोट की तरफ दूसरी आसन वासन की तरफ को जाता था। छिपीलीकोट की वाली सोरंग में लगभग ६० मीटर अन्दर तक हम गये। उसमें आगे का मार्ग बड़े–२ पत्थर गिर जाने से अवरुद्ध हो गया है। चार फुट चौड़ा, छः फुट ऊँचा, बीच–२ में सीढ़ियां हर १५ मीटर के बाद बाहर के लिए झरोखे बने हैं। जिनसे हवा व प्रकाश अन्दर आता है परन्तु वाहर का आदमी अन्दर कुछ नहीं देख पाता है। उस युग में इतने हार्ड रौक को बिना यन्त्रों के इतनी सफलता से काट देना सचमुच अपने आप में आश्चर्य है। अब तक उपलब्ध मानवकृत सोरंग में उत्तराखंड में यह सबसे बड़ी सोरंग हो तो कोई शक नहीं। दूसरी सोरंग किले के नीचे से चभुवान की तरफ जाती थी। किम्वदन्तियां हैं कि कत्यूरी रानियां, राम गंगा स्नान के लिए इसी मार्ग से जाती थी। आगे चलकर यह मार्ग भी बन्द हो गया। रामगंगा के पास चभु के पास पुनः सोरंग दिखती है।

द्वितीय परिसर : मुख्य राजभवन से १५ फुट गहराई पर चारों तरफ दो सौ फुट की परिधियों में एक चार दिवारी ३ फुट मोटाई ६ फुट ऊँची जिसमें मात्र एक प्रवेश द्वार दक्षिण दिशा की तरफ था। जहां अब भी दरवाजे की शिला ज्यों कि त्यों है।

यहां से विरमदेव नौला तक सीढ़ियां बनी थी अभी भी कुछ अवशेष हैं। द्वार के ठीक सामने सुरक्षा कर्मियों के कई कक्ष बने थे। इनसे लगा हुआ एक मन्दिर था। जहाँ से खुदाई के समय क्रलात्मक सांगिया कई मूर्तिया मिली जो अब राजभवन वाले परिसर में अलग–२ मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठित करा दी हैं। इनमें सूर्य, गणेश, पार्वती, शिवजी, नरसिंह, नव दुर्गा कुछ पहचान में न आने वाली मूर्तियां एक भव्य सरस्वती मूर्ति तथा एक शिलालेख जो ब्राहमी में है। कत्यूर काल में उत्कीर्ण की गयी ये देव मूर्तियां उस युग की कला की जीवित प्रतिमूर्ति हैं।

मन्दिर के पीछे अतिथि कक्ष थे परिसर में चारों तरफ कई खण्डों में दुमंजिले कई भवन थे। ये राजपरिवार कर्मचारियों, पुरोहितों तथा सेवकों के लिए थे। उनकी बुनियादें अभी भी विद्यमान हैं। इस प्रकार सैकड़ों महल जिनमें रसोईघर थे। आँगन में कुछ उखलें, मिले सम्भवत् वे नित्य ताजे भोग लगाने के लिए हों।

प्राकृतिक प्रकोपों, सैकड़ों वर्षो की बरषा, धूप, आंधी तथा ठैकेदारों, सड़क बनाने वालों, ग्वालों के द्वारा आर्थिककाय के लिए इन भवनों, चार दिवारी के पत्थरों को तुड़वाकर इतिहास की इस धरोहर को खण्डहरों में फिर इसको भी ध्वस्त किया जाता रहा है।

चमत्कार ''थौ'' : लखनपुर के ठीक उत्तर में पादतल पर छिपलीकोट से नीचे सौनगाँव कुरमाड़ के सामने ३०० फुट, ऊँची चट्टान की ५०० फुट की ५०० फुट की चौढ़ाई से कटकर २००' x ५००' फुट का एक समतल मैदान बनाया गया। जिसको आज भी ''थौ'' नाम से पुकारा जाता है। इसके माने हुए समतल, इसके मध्य में अपने ईष्टदेव शिवजी (शिवलिंग) हरे पत्थर पर ३ वालिस्त गोलाई १½ विलिस्त ऊंचाई चन्दन चर्चित व चतुष्कोणीय शक्ति पर प्रतिष्ठित आज भी हैं। बाहर गणेश, भैरव और नाग देवताओं की

मूर्तियां हैं। शंकर भगवान के सम्मान में इस लोक का नाम काशीणीपाटा रखा गया। जो अव तक प्रचिलित है। इस हाई रौक को २० लाख घनफिट काटकर ३३ हजार मानव दिवसों में समतल किया होगा इसके सिरहाने से एक सोरंग बनाने की योजना थी। जिसको छिपलीकोट के अन्दर से होकर लखनपुर वाले सोरंग पर मिलना था। इसको अब रिड़खुटिया, छीड़ा या उदयार कहते हैं। इसमें १५ फुट तक मैं कठिनाई से अन्दर गया। सम्बलों व घनों के निसान उन वीरों की वीरता की प्रतीक आज तक उस युग के सौर्य और निर्माणं के गवाह हैं। सामने से देखने पर वह कटाव व मैदान साफ दिखता है। अब उसमें आम का बाग है। तब इस "थौ" का उपयोग सैनिकों तथा किले के लिए खाद्यान व युद्धु सामग्री सुरक्षित रखने के लिए किया गया होगा। राजभक्ति और लोकभक्ति के इस चमत्कार को नमस्कार है।

किले की सुरक्षा : किला हर प्रकार अविजित व सुरक्षित रहे। इसके लिए कई प्रकार के प्रबन्ध किये गये थे। प्रथम किले के नीचे की पहाड़ी को छोड़कर इतना सपाट कर दिया था कि कोई शत्रु ऊपर चढ़ न सके। जहाँ छिलान सम्भव न था। वहां उत्तर पश्चिम में मानचवाड़ी घटों के नीचे सोरंग के ऊपर तक एक सुरक्षा दिवार सवा मीटर चौड़ी २ मीटर ऊँची तथा २०० मीटर घेरे में बनी है पूरे किले के लिए १८ लाख घनमीटर पहाड़ काटना पड़ा था। घुड़साल पर चौकस अश्वारोही सदा रहते थे। ६ बड़ी २ खाईयों, २२ खलिहान बनाये गये थे।

आसन-वासन : पूर्व दिशा की सुरक्षा के लिए पित्तर कुण्डी के ऊंपर आसन–वासन पर्वत शिखर में ७ (सात) खलिहानौं पर सात किलेनुमा भवन राजपरिजनों, सेनापतियों तथा अमात्यों के लिए बने थे। इनके चारों तरफ २२ खलिहान उनसे लगे हजारों भवन सुरक्षाकर्मियों के लिए थे। खण्डहर अभी भी उस नगरव्यूह की रचना की गवाही दे रहे हैं। इसी पहाड़ी के पाद तल रामगंगा–कलरों नदी के संगम पर एक शिलालेख था। इस पर कुटिला भाषा में लिखा गया शिलालेख था। मैं जब फ़ोटो लेने गया तब तक वह तोड़ी जा चुकी थी इसी प्रकार कितने ही ऐतिहासिक चिन्हों को मिटा दिया है। लखनपुर किले की सुरक्षा के लिए चारों दिशा में चार कोट बनाये गये

थे। आज वहाँ भवनों के खण्डहर व किलों के नाम मात्र ही शेष रह गये हैं।

१. पूर्व दिशा में झण्डीकोट : झण्डीकोट, आसन–वासन परिसर और लखनपुर के मध्य था। जहां पूर्व दिशा की रक्षा करना इसके जिम्मे था। वही आसन–वासन के लिए भी आवश्यक सन्देश लाना व पहुंचना था। यहां के खण्डहर आज भी उस युग की याद दिलाते हैं। इसी के जड़ पर भिकुवा चौकी थी। पादतल पर हाट बसा था जो अब भी है।

२. पश्चिम में दादुरी कोट : हर किले की तरह दादुरी कोट में भी एक फौजी टुकड़ी रहती थी जिसकी जिम्मेदारी पश्चिम दिशा से किले की रक्षा का दायित्व था। वह कोट सबसे ऊँचा है इसलिए यहां से पूर क्षेत्र पर नियन्त्रण का दुहरा भार भी इस पर था।

३. उत्तर में छिपीलीकोट : इस दिशा से किले की रक्षा करने के अलावा लखनपुर में "थौ" के बीच सम्पर्कसूत्र था इसी मार्ग में गुप्तचरों के छिपने के स्थान बने थे। उनके निर्देश पालने का काम इस कोटदार का था।

४. दक्षिण में बकरीकोट : यहां खण्डहर आज भी है। विरमदेव नौला इसी के मध्य है। यह कोट किले के सर्वाधिक नजदीक है। दक्षिण दिशा भावर से आने वालों पर निगरानी इसके जिम्मे थी। वही किले के लिए पानी राशन, सेबक, ईधन, दूध आदि की व्यवस्था करना इस कोटद्वार का काम था।

अगनेरी : आशन्तिदेव ने किले के उद्घाटन पर रामगंगा के दाहिने तट पर वैराठ के सामने अपने ईष्ट देवी की (आगनेय कोण में स्थित होने के कारण) अगनेरी नाम से स्थापना की। हर वर्ष माघ पूर्णिमा में यहाँ सौ साल पहले तक उनकी समृति में मेला लगता था।

सुइठौ : लखनपुर के सामने फाँसी घर था जिसको सुइठौ नाम से आज भी जाना जाता है। यहां से लखनपुर उत्तर दिशा में होने के कारण कत्यूरों को श्रद्धा समर्पित करने के लिए सुईठौ स्नान आज भी होता है यहां पर कत्यूर लोग स्नान करते थे।

राजधानी स्थानान्तरित : जब राजनैतिक व भौगोलिक कारणों से राजधानी का जोशीमठ से स्थानान्तरण अनिवार्य हो गया तब अपरिहार्य कारणों से राजधानी वर्तमान लखनपुर विराठपट्टन के बजाय बैजनाथ गरुड़ (कबीर पुर) में जयसिंह के समय स्थानान्तरित हुयी। इसका काल निर्धारण इतिहासकार सातवीं से दसवीं सदी के मध्य मानते हैं। लखनपुर (विराटपट्टनम) उपराजधानी बनी रही इसको पूर्ण राजधानी बनाने की योजना बदल जाने से पिछली सदियों से निर्माण कार्य रोक दिया गया। इंसका प्रमाण थौ'' का अधुरा बना सोरंग मानच्वाड़ी के पास बने सैकड़ों भवनों की मात्र बुनियाद तक खुदाई। कई भवनों का आधा अधूरा बनना इसके ऐतिहासिक प्रमाण हैं। वैराठ तथा बैजनाथ में पायी गई ईंटे, मिट्टी के पात्रों के आकार, बनावट को रासायनिक जांच से दोनों की समानता भी यह सिद्ध करती है कि दोनों घाटियों में एक साथ कत्यूर सभ्यता का विकास हुआ। ईंटे १६" x १२" x २" आकार की उस समय बनती थी। जो दोनों घाटियों में पायी जाती हैं।

बैजनाथ वाले कार्तिकेय से केन्द्रीय राजधानी का कार्य सफलतापूर्वक संचारित हुआ। यह कत्यूर काल का स्वर्णिम युग था। उस युग में मूर्तिकला, व मन्दिर निर्माण का सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित किया गया।

राज्य विघटन : राज्यपरिवारों के अन्दरोनी षडयंत्र, पूर्वी आंचल पर चन्दों का दिन ब दिन बढ़ता दबाव था। उधर वीसलदेव चौहान ने ११५१ में तोमर नरेश को पराजित कर दिल्ली पर कब्जा करने के बाद कत्यूरी राज्य को हिमालय पादतल तक अपने अधिकार में ले लिया। ११८४ में सुधारदेव के समय माण्डलिक राजाओं पर नियंत्रण नहीं रहा उन्होंने अपने को स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया। डोटी, बैतड़ी, आकान्ता अशोक चक्र द्वारा सुधारदेव युद्ध में मारे गये। फलस्वरूप सारा केदारखण्ड तथा अधिकांश मानस खण्डों पर आक्रान्ताओं का आधिपत्य हो चुका था। इसके पहले सारा मानस खण्ड ६ कत्यूरी राज्यों में बँट गया था। इनमें एक शाखा बैजनाथ में (सुधारदेव), दूसरी अशान्तिदेव पाली, (३) निरजन देव डोटी (४) अभयपाल देव अस्कोट (५) बेहालदेव सुई तथा (६) गुजरदेव द्वाराहाट शाखा के संस्थापक नरेश हुए।

कत्यूरी शक्ति का पुनरुत्थान : १२वीं सदी के आस पास घटी एक घटना चक्र ने उत्तराखण्ड में कत्यूरी राज्य का पुनरुत्थान करा दिया। सुधारदेव के उत्तराधिकारी इन्द्रदेव को सन् ११६१ में नेपाली आक्रान्ता, अशोकचव्ल ने जो पश्चिमी नेपाल (डोटी, बैतड़ी, डलू) का राजा था। जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। वह मानस तथा केदार भूमि के बहुत बड़े भू–भाग पर १२०६ तक अधिकार जमाये रहा। इसकी पुष्टि गोपेश्वर के शिसूहा लेख से होती है। यह उन दिनों की बात है जब दिल्ली के चौहान राज्य को मोहम्मद गोरी जीत चुका था। इन्द्रदेव की हारने कत्यूरी राज्य की बची–खुची शाख को बड़ा धक्का लगा, नाराज व असन्तुष्ट माण्डलिक राजा जो कत्यूरों से नाराज थे उन्होंने राज कर देना बन्द कर दिया। साथ ही इन माण्डलिक राजाओं ने आक्रान्ता अशोकचव्ल को अपना नरेश मान लिया।

सन् ११६१ से १२०६ के मध्य इन्द्रदेव के पुत्र लक्ष्मणपालदेव ने कूटनीति चाल चलकर कुछ माण्डलिक राजाओं के साथ आशोकचव्ल की आधनीता स्वीकार कर उनका माण्डलीक राजा बनना स्वीकार किया। इस बीच पूर्वी मानसभूमि डौमकोट, सोर, सीरा, सोनपट्टी के खस माण्डलीक तथा चम्पावत के सिंह आदि स्वतन्त्र राजा बन बैठे।

लक्ष्मण पाल ने बाद में अशोकचव्ल के उत्तराधिकारी क्राञ्चल को १२०६ में आधीनता सूचक उपादान (कर) देना बन्द कर दिया इन दिनों नेपाल में भयंकर सूखा बाद में भूचाल के कारण भूखमरी फैल गयी। जनता को भारी कष्ट उठाने पड़े। ऐसे समय गुस्से में भरे क्रांञचल ने बिना परेशानी के एक विशाल नैपालियों की सेना खड़ी कर ली। उधर दिल्ली में मोहम्द गोरी के आक्रमणों से हारे विस्थापित युद्ध जीवी वीरों को भी अपने साथ मिला लिया। इस दल–बादल को लेकर कालीपार कर उसने कार्तिकेयपुर (बैजनाथ) पर भयंकर आक्रमण कर दिया। बेखबर लक्ष्मणपाल देव व उनके सहयोगी इस विशाल सेना का मुकाबल न कर सके। आक्रान्ताओं ने अभूतपूर्व खूनखराबा कर, लूटपाट के साथ सारी राजधानी को तहस–नहस कर नष्ट कर दिया।

अपनी जान बचाकर लक्ष्मणपाल देव ने पश्चिम की तरफ भाग कर वैराठपट्टनम (लखनपुर) के राजा के किले में शरण ली। उस समय वहां

आसान्तिदेव के चौथी पीढ़ी में उत्पन्न राजा श्यामलदेव गद्दी पर थे। उन्होंने अपने गोत्रीय नरेश लक्ष्मणपाल देव को अभयदान दिया। वैराठपटट्नम किले में प्रवास के दौरान लखनपुर नरेश के साथ मिलकर एक योजना तैयार की गयी। दूसरी तरफ असंतुष्ट माण्डलीक राजाओं को अपना सहयोगी बना लिया गया और एक सुसंगठित सेना तैयार कर मौके का इन्तजार करने लगे।

कार्तिकेयपुर की राज्यावस्था क्रांञ्चल अपने माण्डलीक राजाओं को सौंपकर नेपाल चला गया। आधीनस्थ माण्डलीक राजा कर नेपाल भेजते रहे। कुछ समय बाद क्रांञ्चल की नेपाल में मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु का समाचार पाकर उसके माण्डलीक राजा अपने को स्वतन्त्र राजा घोषित करते इससे पहले मौके की ताक में बैठे लक्ष्मणपालदेव ने अपनी सेना विराठपटट्नम से लेजाकर अपना राज्य और बड़ैत, डोटी का बहुत बड़ा भू–भाग जीतकर अपने अधीन कर दिया। माण्डलीक राजाओं ने उनकी अधीनता सहर्ष स्वीकार ली। पुनः लक्ष्मणपालदेव ने बैजनाथ के पास रणचूली हाट में ध्वस्त राजधानी का नवनिर्माण कराया जहाँ देवी की स्थापना कराई गयी। वहाँ अब भी कोट माई के नाम से पूजा होती है। नगर, राजमहल व मन्दिरों का पुनर्निर्माण प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार पुनः एक बार भोट से भावर तक का भू–भाग कत्यूरी शासन के अन्तर्गत आ गया।

लखनपुर नामकरण : कत्यूरी राज्य की पुनःस्थापना के अवसर पर वैराठपट्टम किले में यहां के नरेश ने सामन्तों, राजाओं, महाराजाओं, मण्डलीक राजाओं, राजकुमारों, गुरुजनों तथा राज्याधिकारियों की उपस्थिति में लक्ष्मणपाल देव के सम्मानार्थ एक अलंकरण समारोह का आयोजन कराया। इसमें लक्ष्मणपाल देव को परम महारक महाराजाधिराज की उपाधि से विभूतिष किया गया। (शिलालेख बैजनाथ संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है) और उनकी इस विजय पर किले का नाम बदल कर लखनपुर रखा गया। यह घटना तेरहवीं शताब्दी की है। तभी से इस किले का नाम लखनपुर हुआ।

पृथ्वीपाल और जिया का विवाह : पृथ्वीराज चौहान को मोहम्मद गोरी ने हराकर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज मातृभूमि को

यवनअक्रान्ताओं से आजाद कराने के लिए जीवनभर वन–वन भटकते रहे। और जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहे। यवन तुर्कों के जल्मों से बचने के लिए स्वधर्म व आत्मरक्षार्थ चौहान आदि राजवंशियों के अनेक परिवार, अजमेर, सांभर, रणथामौर, जालौर, चन्द्रावती, आबू, मालवा कन्नौज, कलिंगर, खजुराहो, महोवा, ग्वालियर, चन्द्रवार, झांसी आदि राज्यों के सामंत अपने आयुध जीवी वीरों, पुरोहितों और सेवकों को साथ लेकर यमुना के पूर्व में कटेहर, कटगढ़ (रुहेलखंड) शिवालिक पहाड़ियों के पादतल में बस कर अपनी–अपनी ठाकुराइयां स्थापित करने चले गयें यह घटना ११वी १२वीं शताब्दी की है।

केदार मण्डल से कत्यूरी राजधानी बैजनाथ वाले कार्तिकेयपुर से आने से पूर्व से चली आ रही कमजोर पकड़ अब और ढीली होने लगी। इसी कमजोरी का लाभ उठाकर रुहेलखंड आदि स्थानों पर बसी ठाकुराई के सामंत केदारखण्ड में छल–बल चापलूसी, कहीं जमाता (जंवाई) बनकर कहीं दाज्यू बनकर कत्यूरों के बिखरे राज्य में अपने छोटे–छोटे गढ़ (राज्य) स्थापित करने में सफल होते गये। इन गढ़ों की संख्या ५२ तक पहुंच गयी। इसलिए उस मण्डल का नाम गढ़वाला प्रदेश जो आगे चलकर गढ़वाल हो गया। इन प्रवासी राजपूतों ने अपने छोटे–छोटे स्वतंत्र (गढ़) राज्य स्थापित कर लिए थे। इनमें चाँदपुर गढ़ी, घुड़दौड गढ़ी, देवलगढ़ी, कोटस्यूगढ़, दिभावलगढ़, सिंहगढ़, खातीस्यूगढ़, विडोलस्यूगढ़, लुकन्दरगढ़ आदि प्रमुख थे।

कोटस्यूगढ़, देवलगढ़ के अन्तरर्गत आता है। यहीं पास में सुमाड़ी, देवलगढ़, उंलखगढ़ है। यहाँ पन्त, ममगाईं, बिष्ट, नेगी; बंगारी, रावत, मेहरा, पुण्डीर आदि जातियां रहती थी। उलखा, पुण्डीर, मेहरा जाति के प्रभावशाली राजपूतों का गढ़ था। मालसा से सूर्यवंशी क्षत्रीय खाती खत्स्यू गढ़ में रहते थे। यहां जैराम खाती कहीं झहवराजखाती की बड़ी पुत्री मौला देवी जो आगे चलकर जीया के नाम से विख्यात हुई। वह बचपन से ही सुन्दर, होनहार, विद्वान और बीरंबाला थी। उसकी शिक्षा–दीक्षा योग्य गुरुओं के देख–रेख में राजपरिवार में हुई। उस काल में महिलायें भी युद्ध कला में प्रवीण होती थी। वे अपने पति के साथ या स्वयं युद्ध में जाती थी। पति के शहीद होने

पर स्वयं युद्ध करती और सती होती थी। जिया को युद्ध का प्रशिक्षण और नेतृत्व की शिखा मैते में ही हो गयी थी। रणवीर सिंह चौहान ने गढ़वाल के गढ़ में लिखा है कि देवलगढ़ उलखगढ़ में महिलाओं की पितरकुण्डी इस बात को साबित करती हैं कि वे युद्ध में भाग लेती थी। शहीद होने या सती होने पर उनकी विरांगना के रूप में पितरकुंडी बनाकर प्रतिष्ठित किया जाता था। उत्तराखण्ड में सती गाँव, सत्तीचौरा, सतीमठ, सतीथान, नाम से कई स्थान भी उस युग की वीर नारियों का होना साबित करता हैं इन दिनों लखनपुर में पृथ्वीपालदेव, (पीजमदेव) सिंहासनरुढ़ थे। उनकी वीरता के बारे में उत्तराखण्ड ही नहीं सारे उत्तरी भारत में सोहरत थी। चारण उनकी यश गान में गाते थे। जै पृथ्वीपाल लै पृथ्वी हलकाई, सम्मान झलकाई''।

खातीराज परिवार ने जिनके बारे में प्रसिद्ध था पहाड़ में खाती मैदान में हाथी ने कत्यूरी नरेश पृथ्वीपाल के साथ झहवराज (जैराय) की पुत्री जिया की सदी परम्परा और राजनैतिक दृष्टि से लाभकर मानकर बड़े धूम–धाम से हुई थी। जिया को लखनपुर राजपरिवार को विदा किया था। पुण्डीर के माहरासरदारों के खातीयों से मधुर सम्बन्ध थे। इसीलिए जिया की सुरक्षा के लिए बारात के साथ माहरा वीरों की एक सुरक्षाटोली भी खत्स्यू से लखनपुर आयी। ये माहरा विरादरी के योद्धा यहीं बस गये। कत्यूरों ने उनको प्रमुख दिवानों के पद पर नियुक्त कर उनके लिए वैराठ के सामने महरा कोट नामक स्थान जागीर में दिया था। तभी से महरा यहीं बस गये।

सहबराज खाती की छोटी पुत्री का व्याह कटेहर के राजा के साथ हुई। इन्हीं का पुत्र हरिसिंह (हरु) नाम का राजा हुआ। इनके रिस्तेदारी की एक भतीजी चम्पावत के दीवान कालूराय को ब्याही गयी। जिका पुत्र ग्वेल नाम से कत्यूरी सेनापति हुआ।

लखनपुर की तीसरी अमर घटना : एक ऐसी घटना घटी जिसने जिया, लखनपुर और कत्यूरों के इतिहास को अमर कर दिया। जो सम्मान भारत की आजादी के लिए झांसी की रानी का है वही स्थान ५ सौ वर्ष पूर्व अपनी मातृभूमि को अक्रान्ताओं से बचाने के लिए जिया के बलिदान से सम्पूर्ण उत्तराखण्ड को मिला था।

कटेहर और दिल्ली सल्तनत के बीच चली आ रही कटुता की परिणति १३८२ की एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। इन दिनों कटेहर का शासक खडकू था और दिल्ली की गद्दी पर फिरोज तुगलक आसीन था। एक दावत में राजा खडकू ने 'बदांयू के तुर्क प्रशासक सैय्यद मोहम्मद और उसके भाई सैय्यद आलमदीन को पुस्तैनी रंजिस के कारण मरवा दिया। इस खबर ने फिरोज तुगलक को गुस्से में पागल बना दिया। उसने अपने प्रशासक की मौत का बदला लेने के लिए दल–बादल सहित कटेहर पर भयंकर आक्रमण कर दिया। नर–नारी, बालक–वुद्धों को मूली गाजर की भाँति काटती हुई, गांव कस्बों को लूटती, आग लगाती, बलात्कार करती यवन फौज ने कटेहर को एक दम बरबाद कर दिया। चारों तरफ त्राही–त्राही मच गयी।

खडकू अपनी जान बचाकर अपने मौसा की शरण में लखनपुर पहुंचा।

पृथ्वीपाल जिनकी प्रसस्ति में कहा गया है। वे महान पराक्रमी थे। उसके भय से आकाश तक बादलों के बवंडर उठते थे। पृथ्वी हिलती थी। रामगंगा के घाट पर कठैतों के खडग खडकते थे। ऐसा ही वीर दिल्ली की सल्तनत के बैरी को शरण दे सकता था। हालांकि इस घटना ने उत्तराखंड का इतिहास ही बदल दिया था। पृथ्वीपाल ने राजा खडकू को अभयदान देकर मानो देहली दरवार को सीधी चेतावनी दे दी। इस खबर को सुनकर तुगलक तिलमिला उठा।

कई दिनों से फिरोज तुगलग तिब्बत पर आक्रमण करना चाहता था। लेकिन मार्ग में कत्यूरी नरेश अवरोध बना था। तिब्बत का रास्ता यही से होकर जाता था। क्योंकि उसने सुना था तिब्बत सोने का देश है। वहां अपार स्वर्ण भण्डार हैं। इधर तुगलक का खजाना खाली था।

अब तुगलक के सब्र का बांध टूट गया। उसने एक तीर से दो वार करना चाहा। प्रथम पर्वतीय राजा पृथ्वीपाल से बदला लेना, दूसरा तिब्बत को लूटना। बस फिरोज तुगलक ने क्राञ्चल अभियान के नाम पर ७ लाख फौज भेज कर आक्रमण बोल दिया।

इससे पहले की सीमावर्ती क्षेत्रों के निवासी मोहम्मद गोरी, इब्राहिम, इलतुतमिस, बलवन, खिज्रखा आदि लूटेरे अक्रान्ताओं के पिछले आक्रमणों

को अभी भुला भी नहीं पाये थे कि सिर पर यह अचानक भयानक आक्रमण होता सुनकर सारे पर्वतीय क्षेत्र में खलबली मच गयी। प्रजा भयातुर हो सिहर उठी। पिछले युद्धों में ये लुटेरे निर्दयतापूर्वक अगणित हत्यायें कर लूटपाट के बाद सहस्त्रों निरपराध स्त्री–पुरुषों को दास बनाकर भेड़–बकरियों की तरह हाँकर ले गये थें कटेहर आदि प्रान्तों पर १३३४ में मुहम्मद तुगलक के फिर १३३६ में तैमूर के आक्रमणों को प्रजा भूली नहीं थी। इस संकट काल में पर्वतीय संसकृति और सारी प्रजा पर जबरन थोपे गये युद्ध का प्रतिकार करने के अलावा दूसरा रास्ता नहीं था। वीर राजरानी जिया के नेतृत्व में एक विशाल सेना लखनपुर से कूच कर गयी। जिसमें विरमदेव व उनका भतीजा हंसकुवर भी शामिल हुआ। इस कत्यूरी सैनिकों की संख्या नौ लाख बताई जाती है। मातृकुल से मिली विरासत में युद्धकला निपुण विरांगना जिया ने गौलाघाट (चित्रकला) रानीबाग में अपने युद्ध कौशल और नेतृत्व से यवन सेना को न अपितु रोके रखा। उनकी यह प्रतिज्ञा भी पूरी हुई की मेरे जीते जी तुर्की अक्रान्तामेरी मातृभूमि में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। प्रथम यवन सैनिकों को कुछ कामयावी मिली उन्होंने युद्ध स्थल से छल द्वारा जिया का अपहरण करवा लिया। लेकिन पीछे से विरमदेव हंसकुवर की कत्यूरी सेना के युद्ध में पहुंचते ही युद्ध का नक्सा ही बदल गया। उन्होंने लाखों यवनों को मौत के घाट उतारते हुए जिया को मुक्त कराया। शेष यवनों से जूझते हुए जिया शहीद हो गयी। सारे आक्रान्ता मारे गये। विजय कत्यूरों की हुई। जिया को इस विजय ने जै जिया बनाकर पूज्यनीय स्थान प्रदान करा दिया। हालांकि इस निर्णायक युद्ध में विजय पर्वतियों की हुई। परन्तु जिया के साथ लाखों वीर कत्यूरियों को भी अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। फलस्वरूप कत्यूरी राज्य के विघटन के दिन भी इस युद्ध के पश्चात प्रारम्भ हो गये। तभी से कत्यूरी महारानी जिया की चितास्थली (रानीबाग) चित्रशिला नाम से आज भी भी पूज्यनीय और प्रेरणाश्रोत बन गई है।

इस युद्ध के बारे में मुसलिम इतिहासकार फरिसता तथा इव्वयूला ने स्पष्ट लिखा है, एक पहाड़ी राजा जिसने देहली सलतनल की अधीनता स्वीकार नहीं की, प्रथम तो दिल्ली सुलतान को सफलता मिली। परन्तु वर्षा ऋतु प्रारम्भ होते ही धूर्त पर्वतवासियों की और कुमुक आने से तुर्क सेना का सर्वस्व अपहरण कर उनको मौत के घाट उतार दिया। सिर्फ दस

अश्वारोही इस हार की खबर देने को बच सके। जब वे इस दुखद समाचार को लेकर सुलतान के पास गये, गुस्से में फिरोज तुगलक ने उनको भी कत्ल करवा दिया।

जिया के बलिदान की कहानयिां सर्वत्र देश काल व स्थान भेद के कारण अनके रूपों में आज भी गायी जाती हैं। लेकिन इसमें दो राय नहीं हैं। उनके शौर्य और बलिदान ने पर्वत के स्वाभिमान की रक्षार्थ उस युग में जो त्याग किया उसी के कारण चित्रकिला (रानीबाग) युगतीर्थ बन गया और जिया, जै जिया, मां जिया, बनकर देवी रूप में पूजी जाने लगी। आज भी जागर कर्ताओं में जै जिया को आहुत कराया जाता हैं वे सुख, समृद्धि और शान्ति का आशिर्वाद देती हैं। जिया ने परम्पराओं की रक्षा के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था। इसलिए अपने मातृकुल, ससुर कुल दोनों आज भी कहते हैं। "पुत्री पवित्र किये कुल दोऊँ"। तुर्कों द्वारा विस्थापित कटेहर के राजा हरसिंह (हरु) जो जिया के बहन का पुत्र था। सन्यासी भेष में कत्यूर राज्य में गोपनीय रूप से जनशक्ति को एकत्रित करने में लगा रहा। इसमें कत्यूरी राजाओं ने उनकी भरपूर मदद की। फलस्वरूप वे अपने खोये राज्य पर भी पुनः अधिकार प्राप्त कर सके।

तराई भावर में दसौत (कर) वसूलते समय खैरागढ़ की लड़ाई में उत्तमदेव मारे गये। इसलिए सारंगदेव की मृत्युपरांत लखनपुर की गद्दी पर विरमदेव का अभिषेक किया गया। दसूरे धड़े के नरेश पीतमदेव (पृथ्वीपाल) थे जो रणझूली हाट में सिंहासनरुढ थे। पृथ्वीप्राल की मृत्यु तब हुई जब उनका पुत्र धामदेव की माल की सुरक्षा के दौरान तुर्क सेनापति सधुआ से युद्ध चल रहा था। गद्दी खाली देख विरम देव को तिलक सारा गया। पिता की मृत्यु का समाचार पाकर धामदेव वापस आये। पिता की अन्तेष्टि कर पुनः सेना लेकर पातलीइन गये व सधुवाके साथ भयंकर युद्ध हुआ। उसको मारकर कालागढ़ का इलाका फिर कत्यूरी राज्य में मिला लिया। इस जीत ने धामदेव को उस समय का सर्वाधिक शक्तिशाली राजकुमार घोषित किया।

चम्पावत के कालूनाथ (हलराय) का पुत्र ग्वले (गोरिला) था, जो धूमकोट के गढ़पति थे, उनको जिया की रिस्ते की बहन ब्याही गयी थी। हलराय भी कत्यूर वंश के थे, दोनों का मामाकोट एक जगह होने से आपस में घनिष्ट मित्र भी थे।

इसलिए कई युद्धों में गुरिला धामदेव की मदद् में साथ–साथ लड़े थे। वे बड़े वीर और न्यायप्रिय थे। धामदेव ने इनको अपना सेनापति बना लिया था। चम्पावत में योरचन्द के एक युद्ध में गुरिला घायल हो गये थे। उनकी एक टाँग टूट गयी थी। इतिहासकारों का मानना है कि १४३० के आस–पास हुए इस युद्ध में धामदेव मारे गये।

लखनपुर की चौथी घटना : इतिहास बहुत जल्दी बदल रहा था। कत्यूरी शासन दिन पर दिन ढीला होता जा रहा था। पीतमदेव के पुत्र मालूसाही जो वैराठ के राजा थे। सुनपत पुत्री राजुला जिसकी सुन्दरता देव गणिका से कम नहीं थी। उसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर उसके साथ विवाह करने के लिए आतुर थे। राजमाता धरमादेवी ने बहुत समझाया। राजकुल में एक परिगणित जाति की बेटी को कैसे लाया जा सकता है। उनके लिए एक से एक सुन्दर–सुन्दरियाँ खोजी गयी। माता के कहने पर मासी में सोमनाथ का मेला आयोजित किया गया। जिसमें पूरे क्षेत्र की सुन्दरतम् वाला बुलाई गयी। लेकिन मालूसाही के हृदय पटल पर राजूला का जोभन समाया था। सारे राज परिजन, पुरोहित, अमाण्य समझाते बुझाते हार गये। लेकिन राज हठ, राज हठ थी।

अन्त में विवस होकर एक फौज लेकर सन्यासियों के भेष में स्वयं मालूसाही जोगीभेष में अपने मित्र राजा हरु को भी लेकर हूण देश को चल दिये। राजूला को पाने में मालूसाही सफल हो गये। लेकिन विदाई के समय छल–बल से उनको तथा उनके सभी साथियों को धोखे से मार डाला गया। जिसमें बताया जाता है। राजूला भी सती हो गयी थी। अपने कैलाश मानसरोवर यात्रा के समय इस प्रदेश में तिब्बत विजेता जोरावर सिंह की समाधि पर जब हम गये। वहाँ हमें बताया गया कि धोखे से जोरावर सिंह को मारा गया था, तब मुझे स्मरण आया कि इस क्षेत्र में छल–बल की राजनीति बहुत पुरानी है। इसी कारण मालूसाही को भी मारा गया होगा। जोरावर सिंह के साथ मुझको मालूसाही व राजूला को वहाँ एक अंजुलि जल चढ़ाने का मौका मिला था।

सामंती युग में सरे राज्याग्रह, सामाजिक बन्धनों को त्याग कर एक परिणित जाति की कन्या के साथ वैवाहिक सम्बन्ध की बात करना अपने

में एक अभूतपूर्व घटना थी। सम्पूर्ण उत्तराखण्ड को इस प्रणयगाथा ने जो एतिहासिक दर्जा दिया उसका अभिलेख भौगोलिक, सामाजिक और राजनीति का समावेश कलात्मक ढंग से किया गया है। इसका कार्यकाल इतिहासकार कत्यूर काल की सम्पति १४२०–१४६० के मध्य मानते हैं।

दरबार और नृत्यांगनायें : कत्यूरी दरबारों की अपनी ही सान व आन थी। दिन–भर राजकाज निपटाने के अपरान्त सायं को सारे दरबारियों के साथ नृत्यांगनायें अपनी कला का प्रदर्शन करती थी।

कत्यूरी दरबार लखनपुर की प्रसिद्ध नृत्यांगना जमुना पातर, जिसको अपने पीढ़ी दर पीढ़ी से इन राजदरबारों में नृत्यकला विरासत में मिली थी। वह एक सुन्दरी राज परिवार के जोड़–तोड़ में माहिर तथा नृत्य निपुणा थी, तेल नैकड़ा की रहने वाली थी। उसका पति हमेरू नायक अपनी हुड़किया थाप पर सारे दरबार को मन्त्रमुग्ध कर देता था। उसकी राजपरिवार से वफादारी का सपूत जब पृथ्वीपाल की मृत्यु हुई थी। तब हमेरू ने पृथ्वीपाल की चिंता में अपना आत्मदाह कर लिया था। एक बार उसका युवा पुत्र विजुवा धामधेव के साथ सागरताल लड़ाई में भावर गया था। वहाँ सदुवा को मारने में उसने धामदेव की बड़ी मदद की। धामदेव ने प्रसन्न होकर लखनपुर में विजुआ को इनाम देने के लिए आम दरबार का आयोजन किया। 'नृत्य, वाध्य आदि आवश्यक कार्यों के बाद राजकुमार धामदेव ने विजुआ को मुँहमांगा इनाम मांगने का वचन दिया। विजुआ बड़ा संकुचित था। उसकी मां जमुना चाहती थी कुछ इलाका वह जागीर में मांग ले। लेकिन किसी षडयंत्र के तहत विजुआ ने मझली राणी मांगीं, सुनते ही राजा व राजसभा स्तब्ध रह गयी। धामदेव ने बड़े संकोच के साथ घोषणा की कि हम वचन दे चुके थे। सूर्यवंशियों का वचन व्यर्थ नहीं जाता है। जाओ राणी तुमको दी जाती है। और दरबार उठ गया। कुछ राजभक्तों को इस घटना से मर्मानत वेदना हुई, सदुआ दरबार से बाहर निकला ही था। कुछ गुस्सायें कर्मचारियों ने भिकुवा के पास उसका बध कर दिया। चूँकी रानी सदुवा को देने की आज्ञा हो चुकी थी। इसलिए रानी विजुवा के साथ सती हो गयी। कौरो–गाड़ में जहां वह सती हुई थी। आज भी वह स्थान सतीगांव के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार की अनेक होनी–अनहोनी घटनायें राजकुलों में होती रहती थी।

लखनपुर से कत्यूरों की विदाई : यवन अक्रान्ताओं के बार–२ कटेहर आदि शरहदों पर भयंकर आक्रमणों से विस्थापितों की बाढ़ सी उत्तरांचल में आने लगी। जनसंख्या का घनत्व बढ़ता जा रहा था। तिब्बत व नेपाल में अस्थिरता के वातावरण ने भी उत्तराखण्ड की प्रसासनिक व्यवसथा पर लगातार अराजक तत्वों का दव–दवा बढ़ता जा रहा था। करांचल अभियान और हूँण देश, राजूला–मालूसाही प्रकरण के कारण लाखों वीर योग्य प्रशासक और अमात्य युद्धों में मारे गये थे। इससे कृषि व राजकर में भारी गिरावट आ रही थी। साथ में कत्यूरी माण्डलीक राजाओं की आपसी फूट बढ़ती जा रही थी। इन सब कारणों से उत्पन्न मजबूरियों का राजनैतिक लाभ मिला चन्द राजाओं को उनकी राज्यविस्तार पिपासा ने कत्यूरी राज्य को सकोड़ कर सीमित दायरों में घेर लिया था। जिनविरम देव के लिए लोकोक्ति प्रसिद्ध थी।

"माल मलि सौकाण तली की दसौत उधूनी" (भावर से भोट तक का कर वसूलते थे) अब वे मात्र लखनपुर पालीपछाऊ तक के राजा रह गये थे।

चन्दराजा कीर्तिचन्द जिनको चन्दराज के विस्तार का सर्वाधिक श्रेय प्राप्त है। ने १४०८ के आसपास अपनी युद्ध पियास शान्त करते हुए चौमैसा, सालम, फण्डाकोट, ऊँचाकोट, धनियांकोट, दखाता, कोटा, वारामण्डल, आदि १२ कतयूरी राजाओं को जीतता हुआ, नर संहार करता, कौडारौ, वौराहो, में कत्लेआम का आदेश देता हुआ आगे बढ़ रहा था। उनके सैनिकों ने कैडारौ, वैरारौ आदि इलाकों में कत्लेआम कर लासों से अलाका पाट दिया। बाल, वृद्ध, अबला, ब्राहमण, किसी को नहीं छोड़ा जो मिला उसको मारा–काटा। खून की धारायें बह गयी। इतिहास साक्षी है। उस कत्लेआम से कई दिनों तक गगांस नदी में खून, लासें, मानव अंग बहते रहे। ऐसा नर संहार कटेहर में यवनों ने भी नहीं किया था। परन्तु यहाँ चन्द राजाओं के हिन्दु सैनिक अपने ही हिन्दू कत्यूरी रियाया पर कहर ढा रही थी।

इस कत्ले आम के बाद कीर्तिचन्द की सेना भिक्यासैण पहुँची। वहां से लखनपुर पर आक्रमण की तैयारी प्रारम्भ कर दी। विरमदेव अपने सहयोगियों के साथ मंत्रणा कर इस निर्णय पर पहुंचे। यदि कीर्तिचन्द का मुकाबला

किया जाता है। तब हमारी प्रजा का भी वही हाल होगा जो कैडारो, वैरारौं आदि इलाकों में हुआ। निरपराध प्रजा का खून बहाने से अच्छा है अपने स्वाभिमान और सुख–सुविधा की परवाह किये वगैर सन्धि कर ली जाय।

कीर्तिचन्द को सन्धि सन्देश भेजकर उन्हें आदर सहित लखनपुर किले में आमंत्रित किया गया। राजा विरमदेव ने प्रस्ताव रखा कि मैं प्रजा के हित में अपना शासित प्रदेश छोड़ रहा हूँ। मेरे राज्य को अपना राज्य तथा मेरी प्रजा को चन्दराज अपनी प्रजा मानें। उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई जाय। सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। सन्धि के अनुसार विरमदेव, लखनपुर किला छोड़कर सैणमानुर मानिला चले गये। रामगंगा को शरहद मानकर पूर्व में चन्दराज्य, रामगंगा की पश्चिमी सीमा से भावर तक का इलाका कत्यूरों के हिस्से गया। यह घअना सन् १४८८ की है।

विरमदेव और समकालीन शासकों पर बहुत से आरोप थोपे गये। उनके व्यक्तित्व को जितना बदनाम किया जा सकता था किया। क्योंकि डूबते सूर्य को कोई प्रणाम नहीं करता है। लेकिन युग की नजाकत और समय की मांग को अनेदेखा किया गया। और विरमदेव के खिलाफ कई छन्द गढे जाते रहे। प्रसिद्ध इतिहास अनवेशक डा० शिवप्रसाद डबराल उत्तरांचल इतिहास में स्पष्ट लिखते हैं।

कितने दुख की बात है। एक ऐसे साहसी और प्रतापी राजा जो अपनी बात के धनी थे। को इतिहास ने भ्रष्टाचारी कहकर उनको बदनाम किया गया। लेकिन अपनी प्रजा के रक्षार्थ संकटकाल में अपना राज्य, अपना स्वाभिमान और सुखसुविधाओं को एक झटके में त्यागकर स्वयं अभावग्रत जीवन जीना स्वीकार किया।

इस प्रकार बिना रक्त पात के हजारों वर्ष की कत्यूरों की धरोहर को अन्त में जनहित में इस प्रकार त्याग दिया "तेरा तुझको अर्पण" मैं अपयश का बोझ ढोता रहूँगा। खुश रहो अहले वतन" तेरा कल्याण हो। मेरे वतन सैणमानुरा में लखनपुर के ही मॉडल का जल्दी में दुमंजिला किला वही ३६ कमरों का जिसमें छज्जे, दरवार, रनिवास सब कुछ था बन गया। विरमदेव वहाँ रहने लगे। यहाँ किले को देखने का मुझे भी अवसर प्राप्त हुआ। उसका मुख्य द्वार दुमंजिला था। १६ फिट चौड़ा, १६ फिट ऊँचा था। उसका फोटो भी खींच लाया था। परन्तु १० साल बाद जब में पुनः गया। किला लगभग

ध्वस्त हो चुका था। न वह मुख्य द्वार न वह सुरक्षा दिवार वहाँ मिली। कितना परिर्वतनशील है यह संसार। कुछ मूर्तियां जो सम्भवतः लखनपुर से विदाई के समय वे अपने साथ लाये हों। एक विशाल नौले में प्रतिष्ठित हैं। उनकी भव्यता, कला, रूप, सौन्र्दय देखने लायक है। वे आज भी गवाही दे रहे हैं। उस महायुग के मानव से महामानव बने युग पुरुषों की महानता की।

सर्व गूवं स्वाहा : देहली की सल्तनत पर १६२८ में जहाँगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ के तिलकोत्सव पर सभी राजा–बादशाह के प्रति अधीनता स्वीकार करने के लिए दरबार में अपना–अपना नजराना लेकर पहुँचे थे। परन्तु गढ़ नरेश महिपतिसाह पर्वतीय दुर्गमता के कारण नहीं पहुँच सके थे। वे स्वाभिमानी, साहसी, वीर और युद्ध प्रिय थे।

उन्होंने अपनी वीरता से तिब्बत हिमांचल आदि राज्य के बहुत बड़े भूभाग को अपने राज्य में मिला लिया था। सन् १६३४ में उनकी मृत्यु के बाद उनके अव्यस्क पुत्र के साथ नाककटी राणी शासन चलाने लगी।

देहली के बादशाह शाहजहाँ ने १६५२ में पिछला बदला लेने (तिलकोत्सव में न आने) का अनुकूल अवसर जाना। इधर कुमाँऊ का राजा वाजबहादुर चन्द ने जिसकी निगाहें गढ़वाल को हड़पने के लिए लालायित थी। देहली बादशाह के पास गुप्त सन्देश भेजे। बादशाह ने सिरमौर के राजा सौभाग्य प्रकाश, कुमाँऊ के राजा वाजबहादुर चन्द, हरिद्वार के राजा नागरदास के नाम संयुक्त रूप से एक फरमान जारी किया कि मेरे वजीर खलीयुललाखां के सेनापतित्व में दस सहस्त्र साही सेना गढ़वाल विजय के लिए रवाना हो मुकरर रथान पर सभी राजा अपनी–२ फौज लेकर गढ़ नरेश को शिकस्त दें। शर्त है गढ़वाल जीतने पर कुमाँऊ की सरहद से सटा हुआ भू–भाग कुमाँऊ को, सिरमौर से लगा हुआ भाग सिरमौर को और गढ़वाल उपत्यका को मुगल साम्राज्य में मिलाना होगा। सभी राजा अपनी–२ फौजों के साथ अभियान में शामिल हो गये।

वाजबहादुर यही चाहता था उसने मौके का फायदा उठाने के लिए मानो पीठ पर छुरा मारकर दोनों तरफ से अपनी सेना गढ़प्रदेश की तरफ झोंक दी। एक फौज पिण्डर घाटी से, दूसरी ने गेवाड़ चौखुटिया होकर लोहाव

पर अपना अधिकार जमा लिया। इससे राजधानी श्रीनगर के लिए खतरा बढ़ गया। गढ़राज्य चारों तरफ से शत्रुओं से घिर चुका था। फलतः उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। गढ़नरेश ने मुगलों का आधिपत्य स्वीकार लिया। लेकिन वाजबहादुर चन्द्र को कुमाँऊ से लगा हिस्सा नहीं मिल सका। इस युद्ध में मानिला के कत्यूरी गढ़पतियों ने गढ़नरेश (जिनके साथ उनके पुराने रिस्ते थे) का साथ दिया था। इसी का बदला चुकाने १६६४ में वाजबहादुर चन्द्र ने मानिला का किला उजाड़ दिया। मानुर में रहने से कत्यूरों के वंशज मनरांल, रजवार, कहलाये। वहां से चौकोट, गेवाड़, व सल्ट तथा गढ़वाल को चले गये। इस प्रकार चन्दों द्वारा कत्यूरों का अन्तिम स्मारक भी ध्वस्त कर सारी स्मृतियों को मिटा कर मानो कत्यूरी राज्य की पूर्णाहुति कर दी हो। कत्यूरों के वंशज मनराल, रजवार जो अब मात्र सयाण रह गये थे। उनको नीचा दिखाने के लिए वाजबहादुर ने वंगारी, रावत व सांवालिया विष्टों को भी सयाण बनाकर चार सयाण बना दिये।

इससे पूर्व कत्यूर बैजनाथ में अन्तिम कत्यूरी राजा सुखलदेव के सन १५४० में धोखे से रुद्रचन्द ने मरवा डाला था। क्योंकि सुखलदेव ने गढ़नरेश बलराम भाट की चन्दों के खिलाफ युद्ध में मदद की थी। उस युद्ध में रुद्रनरेश हार गये थे। सुखलदेव की मृत्यु के साथ ही कत्यूर घाटी से कत्यूर शासन का अन्त हो गया था।

लखनपुर जीर्णोद्धार

जहाँ लखनपुर पुरातत्ववेताओं के लिये खोज का विषय है, वहीं धर्म प्रेमियों के लिए आस्था का मन्दिर और पर्यटकों के लिए विश्रामस्थल है। यहां पहुंचकर इन सबके अलावा कुछ और भी है वहां से चारों तरफ का नयनाभिराम दृश्य अब से ५० वर्ष पूर्व वहां पहुंचकर देखा, विखरे खण्डहरों के मध्य अनेक मूर्तियां, मूर्तिखण्ड, बड़ी–बड़ी गढ़ी हुई लम्बी चौड़ी सांगियां (पत्थर शिलायें) अर्द्ध टूटी कतारे–भवनों के, बिखरे पत्थर, खिलाखण्ड और चारों तरफ दोहरी पारकोटी की कई स्थानों पर छूट चुकी दीवार। इसके बीस वर्ष बाद चौकोट से अपने मित्र परिहार (इनके पूर्वज कभी कत्यूरों के गढ़पति, सेनापति होते थे।) की शादी के बाद झण्डा चढ़ाने लखनपुर गया था। फिर तीसरी बार दस वर्षों के उपरान्त इन्टर कालेज चौखुटिया की छात्र छात्राओं के साथ ऐतिहासिक भ्रमण में प्रधानाचार्य जे.एन. जोशी, इतिहास प्रवक्ता नन्दन सिंह बिष्ट के साथ लखनपुर पहुंचा, सोचा था वे पुरातत्व अवशेष सबको आज दिखाऊंगा जो ३० साल पहले देखा गया था। लेकिन चारों तरफ देखकर अन्तरमन रो पड़ा, क्योंकि वहां न वे मूर्तियां थी, न भवनों के खण्डहर, न पारकोट की चारदीवारी न संगियां, कुछ टूटे फूटे पत्थर खण्ड, भवानों के बुनियाद की कुछ दीवारें, पारकोट का मात्र अवशेष ईनी गिनी मूर्तियां।

ऐतिहासिक अवशेष का यह विनाश निकटवर्ती गांवों के ग्वाल बाल, लकड़हारों तथा सड़क दीवार बनाने वाले ठेकेदारों द्वारा किया गया था। उन बहुमूल्य अवशेषों को लुड़काकर सड़क के भरान में मलवे की जगह भरकर, अपने थोड़े से लाभ के पीछे पुरातत्व जगत को अपूर्णीय क्षति पहुंचाई गई।

जो कुद खण्डहर बचे थे। वे मानो चिल्ला, चिल्लाकर कह रहे थे कि हमारे लिए नहीं इतिहास के मूल्यांकन के लिए, भावी पीढ़ी के लिए कुद तो बचाकर रखो, जो कुछ वहां बचा था उसको एकत्रित कर सुरक्षित करवाने का संकल्प लेकर वापस आ गया था। लेकिन वर्षों तक हिम्मत नहीं जुटा पाया था कुछ करने का। क्योंकि किंवदंतियां प्रचलित थी।

लखनपुर में सरस्वती प्रतिमा

लखनपुर मेले की झलकियां

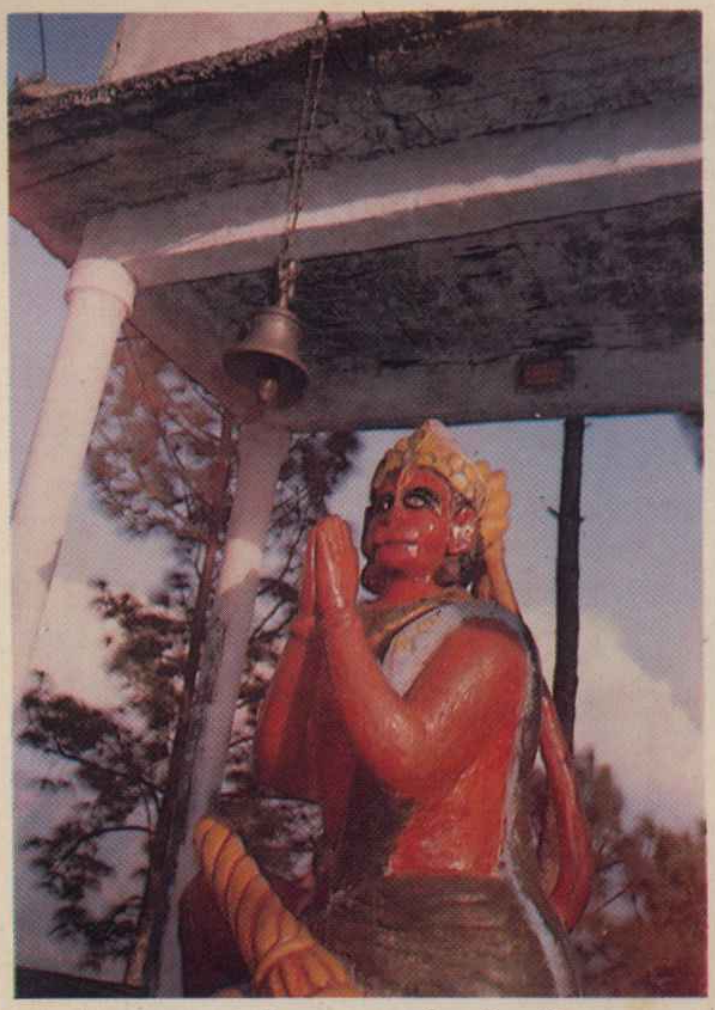

लखनपुर में हनुमान जी की प्रतिमा

लखनपुर में गायत्री प्रतिमा

लखनपुर किले में कुछ करना तो दूर लोग श्रद्धा या अज्ञात भय के कारण ऊपर किले तक जाने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते थे।)

जीर्णोद्धार : इस व्यग्तिगत प्रसंग को न चाहते हुए भी यहां बड़े संकोच के साथ अंकित कर रहा हूँ कि क्योंकि जो सत्य है उसको छिपाना वस्तुस्थिति से मुँह मोड़ना है। यह उन दिनों की घटना है जब कत्यूरों को लखनपुर त्यागने के ५०० वर्ष पूरे हो रहे थे। कीर्तिचन्द विरमदेव सन्धि १४८८ में हुई थी (जिसके अनुसार विरमदेव) को लखनपुर किला छोड़कर मानिला चला जाना था।

१९८८ के कुछ दिन पूर्व से स्वपनों में मुझको कई बार कुछ स्वेत वस्त्रधारी दिव्य पुरुष लखनपुर ले जाते और कहते अब यहां कुछ करो। कई बार ऐसा होता गया हर बार मैं अपनी असमर्थता प्रकट करता पर वे आश्वासन देते सारी निर्माण परिकल्पना साधन और सहयोगी तुमको मिलते जायेंगे बस इसी दिव्य चेतना के आदेश को शिरोधार्य कर लखनपुर में जीर्णोधार का श्री गणेश हो गया। पिछले दस वर्षों से यह निर्माण कार्य चलता आ रहा है। कब क्या करना है, साधन, सहयोग की स्वयं व्यवस्था होती चलती गयी।

१. मार्ग निर्माण : तुरन्त लखनपुर जीर्णोद्वार नाम से एक समिति का गठन कर लिया गया। सर्वप्रथम किले तक पहुंचने के लिए रास्ता बनाना था। क्योंकि किले के चारों तरफ से उसके निर्माण के समय सुरक्षा की दृष्टि से छीलकर अगम्य कर दिया था। मात्र एक प्रवेश द्वार था उसकी सीढ़ियां तोड़ दी गई थी घुड़साल से ४०० मीटर खंडजा किले तक घुड़साल से ही लगभग ६०० मीटर विरमदेव नौला को, किले से ४०० मीटर सुरंग द्वार तक तथा २०० मीटर मानचंवाड़ी से दूसरे सुरंग होते हुए जंगलात की सड़कर पर मिलान कर चारों रास्ते बन जाने से आने जाने की सुविधा हो गई।

२. विरमदेव नौला : हाट गाँव के ऊपर मालू के झाल से घिरा यह विरमदेव नौला पेयजल का मुख्य स्रोत था। ५ सीढ़ियों पर बना ४ फुट गहरा, छत टूट चुकी थी। छत पर लैन्टर डालकर नौले को पुनः चालू किया गया।

पहले जमाने में यहां से किले तक सीढ़ियां बनी थी, कहीं–कहीं पर अवशेष अब भी बने हैं। सारा निर्माण कार्य यहीं के पानी से हुआ। नौले

का धार्मिक व ऐतिहासिक महत्व है। बताते हैं यहां पर किसी भी प्रकार की अपवित्रता व अशौच से भयंकर सांप इसकी रक्षा करते थे।

३. कत्यूरी कीर्ति स्तम्भ : राजभवन वाले परिसर को देवपुंज्ज का स्थान देना था। सर्वप्रथम इस ऊर्जावान स्थल को विशेष भक्ति सम्पन्न केन्द्र बनाने के लिए सारे तीर्थों (भारतभर से) के जल से वेदमंत्रों के साथ अभिसंचित कर जहां अब सूर्य प्रतिमा है उसके गर्भ में २४ हजार हस्तलिखित गायत्री मंत्रों को स्थापित किया गया। एक लघु अनुष्ठान के बाद परिसर के मध्य जहां पर पुराने सिंहासन का चबूतरा टूटे फूटे रूप में था जो अन्तपुर को खुले दरबार से जोड़ता था पर, १२' x १८' का ४' फुट ऊँचा सिंहासन बनाकर जिसमें दो तरफ प्रवेश द्वार चारों तरफ १०८ घण्टियों की घूमती लड़ियों की रेलिंग सामने एक धर्म शिला उस पर न्याय का प्रतीक तराजू लटकता है। इस मंच के मध्य ४' x ४' x १२' फुट का यही की सांगियों से एक कीर्ति स्तम्भ का निर्माण कराया जिसके चारों तरफ सूर्य, स्वस्ति, ॐ तथा जै देव टाइल्सों से उकेरा गये हैं। पादतल में यहीं से प्राप्त कत्यूरों व उनके देवताओं की मूर्तियों को स्थापित किया गया। खुदाई में एक २' x ३' फुट की पत्थर शिला मिली जिस पर हल्के आकार में गायत्री मंत्र खुदा था। इसको सुव्यवस्थित कर मूर्तियां के सिरहाने, कीर्ति स्तम्भ पर अवस्थित कर दिया। यह शिला कत्यूरों की सूर्य (गायत्री) उपासना का प्रतीक है।

४. कत्यूरी झूला : चन्द्र राजा श्री आनन्द सिंह ने कत्यूरों के किसी चमत्कार से प्रभावित होकर एक झूला हाट के धाम देवल मन्दिर में कत्यूरों को चढ़या था। जो वहां कई साल तक रहा। एक लोहार एक बार इसको चुराकर ले गया। बताते हैं उस रात उसका सारा घर भूचाल की तरह हिलता रहा बस दूसरे दिन वापस रख गया। इसकी कुछ कड़ियों की मरम्त कर मंदिर पुंज (लखनपुर) में स्थापित किया गया है। इसको बनाने में गजेन्द्र सिंह मनराल, नारायण सिंह, विसनसिंह, राजेन्द्रसिंह तथा प्रधान शेरसिंह मनराल जी का विशेष योगदान रहा।

५. ओखल : निर्माण कार्य के दिनों खुदान के दौरान कुछ ओखल उस युग के मिले इनमें एक को कीर्तिस्तम्भ के पादतल पर अवस्थित कर दिया ताकि मूर्तियों में चढ़ाया जल इसमें भरता रहे। दूसरे को सामने दस कदम

उत्तर में एक चबूतरा बनाकर इसलिए जमा दिया गया ताकि लोग अपनी कमाई के दो मुट्ठी धान लाकर उनको कूटकर चावल यहां पर देवताओं को चढ़ाये। अगन्याव शब्द कत्यूरराज की उपज है। प्रथम अन्न देवताओं के लिए निकाल दिया जाता था। भावना थी हमारे पास जो कुछ है उसका उपयोग मिल बाँट कर करें। इससे श्रम को प्रधानता दी गई। यही चावल (मोत्यू) यहां की प्रसादी है। इनको प्रसाद रूप में लेते हैं।

६. जीयामण्डप व सूर्य : कीर्तिस्तम्भ से १५ कदम पूर्व में जीया मण्डप बनाया गया। चार खम्भों पर निर्मित जिसकी छत पर एक ध्वज स्तम्भ है। जीया के सम्मान में बनाया हैं यहां पर जीया अवतरित होती हैं। लोग अपनी मनोकामना उनसे निवेदन करते हैं। (विशेष पर्व और त्यौहारों पर) इसी मण्डप में एक सूर्य प्रतिमा (कत्यूर सूर्य उपासक थे, उन्होंने कई सुविख्यात सूर्य मन्दिर बनाये थे।) जिसके कैप्टन कुन्दनसिंह मनराल पुत्र लक्ष्मण सिंह मनराल कारचूली ने कलकत्ता से बनवाकर चढ़ाया है।

७. स्मारक चौरी : खनन में मिले कत्यूरी उपयोग के सिल, बट्टे, बरतनों (मिट्टी) के टुकड़े, जानरा, आदि स्मृति चिन्ह के रूप में यशमाला के पीछे उन शिला खण्डों पर जमाये गये हैं जिन परसूर्य चक्र नेलबूटे आदि उकेरे गये हैं। सब उसी जमाने के हैं।

८. भण्डार गृह : कीर्ति स्तम्भ के सामने भूमि तल पर पुराने खण्डित दीवारों की मरम्मत कर (ये दीवारे एक मीटर चौड़ी थी) उन दो छोटे–छोटे कमरों को भण्डार गृह तथा पाकशाला के रूप में भय बरामदे के बनाया गया। इनकी छत आंगन का काम देती है। इसके निर्माण में कुन्दन सिंह मनराल पुत्र खुशाल सिंह छोटे वालों का सहयोग रहा।

९. नवदुर्गा : जीया मण्डप से पांच कदम पश्चिम एक खम्बे का गोलाकार छत का मन्दिर बनाकर इसमें चारों तरफ आकर्षक ढंग से नवदुर्गा जो यहां की खुदाई में मिली स्थापित की गई है। इसी स्तम्भ में एक ब्राहमी भाषा का लघु शिलालेख (पढ़ा नहीं जा सका) लगाया गया है। इस मन्दिर का निर्माण श्री हर्षवर्धन सिंह मनराल (आई. एफ.एस.) पुत्र जगतसिंह मनराल भल्टगाँव वालों ने इंग्लैण्ड से रुपये भेजकर कराया है।

१०. नरसिंह कक्ष : भूमितल पर पाकशाला के पूर्व में पुरानी दीवारों की मरम्मत कर १२' x १८' फुट के होल का निर्माण कर इसमें नरसिंह भगवान की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई है। यह कक्ष सत्संग के लिए उपयोग में आता है।

११. धामदेव कक्ष : इस नरसिंह कक्ष के दुमंजिले में कत्यूरों के पूर्वज भगवान राम की भव्य मूर्ति सीता तथा हनुमान की लघु मूर्तियों के साथ स्थापित की गई हैं। इसका निर्माण २४ खम्बों पर चार द्वारों सहित किया गया है। इस हॉल में सांस्कृतिक आयोजन होते रहते हैं।

१२. नौ लाख कत्यूर मंदिर : धामदेव कक्ष के तिमंजिले में चार लघु मीनारों के मध्य नौ लाख कत्यूरों की स्मृति में एक मन्दिर का निर्माण कराया गया हैं इसमें एक सिंहासन बनाकर कत्यूरों के प्रतीक रूप में चरण चिन्ह जो यहीं प्राप्त हुए थे। स्थापित किये गये हैं। उनके पार्श्वभाग में उस युग के युद्ध प्रतीक गदा, धनुष, वाण, तलवार, ढाल व भाला स्थापित किये गये हैं। आंगन में एक घोड़ा जिसका निर्माण श्री नारायण सिंह मनराल उडलीखान वालों ने कराया; अगल बगल दो हाथी हैं।

१३. हनुमान मंदिर : कीर्तिस्तम्भ से १५ कदम पूर्व में जीया मण्डप के एक दम दायें महावीर हनुमान जी की साधनारत विशाल मूर्ति स्थापित की की गई जिनका निर्माण इसी स्थल पर किया गया। हाथ जोड़ते हुए धुटनों के बल ध्यान मुद्रा में बजरंगबली ऐसे लगते हैं मानो अभी–अभी कहीं प्रस्थान के लिए पूर्वाभ्यास कर रहे हों। इस मंदिर की आच्छादन का (छत) काम "श्रीमती मोहनी देवी" पत्नी श्री पुष्कर लाल माहेश्वरी चौखुटिया वालों ने करवाया है।

१४. गायत्री मंत्र : हनुमान मंदिर से उत्तर दिशा में मिला हुआ भूमितल पर गायत्री मंदिर पंचमुखी गायत्री की स्थापना कराई गई है। तीनों तरफ से बड़े–बड़े शीशों के मध्य विराजी गायत्री के सैकड़ों प्रतिबिम्ब देखते ही बनते हैं। शीशे श्री दलीपसिंह मनराल पुत्र श्री रुद्र सिंह ने हल्द्वानी से भेजे थे। गायत्री मूर्ति जयपुर से लाने का सौभाग्य इस सेवक को मिला।

१५. साधना कक्ष : गायत्री मंत्र मंदिर के सामने बरामदे के पार एक

विशालहंस प्रधनाचार्य श्री जे० एन० जोशी ने बनवाया है। इसके अन्दर बैठकर जप अनुष्ठान किये जा सकते हैं। एक छिद्र इस प्रकार बनाया गया है कि साधनारत साधक छेद के सामने गायत्री माँ के दर्शन करता रहे हंस मां गायत्री का वाहन है।

१६. शिवालय : गायत्री मंदिर से दस कदम उत्तर पश्चिम में देवाधिदेव महादेव का विशाल शिवलिंग 2½'x1½' आकार में जागेश्वर भैली में स्थित हैं शिवजी और राम जी २४ कदम के फासले पर आमने सामने एक दूसरे को निहारते हुए स्थापित हैं। मानो तुलसीदास जी के अनुसार "भगवान राम कहते हैं–शिव समान मोहि प्रिय न दूजा" और भगवान शंकर प्रति उत्तर में जबाव दे रहे हैं "सो ममम इष्ट देव रघुवीरा"।

१७. नन्दी : शिवालय और साधना कक्ष के मध्य एक विशाल शंकर वाहन नंदी की बैठी हुई मुद्रा में मूर्ति बनी है। इस मूर्ति को श्रीमती गंगा देवी मनराल पत्नी श्री चतुर सिंह भल्ट गाँव ने बनवाया है।

१८. यज्ञशाला : कीर्तिस्तम्भ से १० कदम उत्तर में एक यज्ञशाला बनाने का मुझको निर्देश हुआ। कत्यूरकाल की संगियों से यज्ञ वेदी विनिर्मित की गई है। लखनपुर जीर्णोद्वार से पूर्व यहीं हमने भूमि पूजन किया था। अपने चौवनवें वर्ष में इस यज्ञशाला को बनाने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसीलिए ५४ कलश इसमें स्थापित किये हैं।

१६. तुलसी सालिग्राम : शिवालय और यज्ञशाला के मध्य एक ऊँचे गोलाकार चौरी पर तुलसी मंच इसके अन्दर सालिग्राम की स्थापना की गई है। इसको श्रीमती पुष्पादेवी पत्नी श्री बचीराम काण्डपाल चौखुटिया ने बनवाया है।

२०. व्यास आसन : नरसिंह कक्ष व पाकशाला के मध्य वाली गली के ऊपर धामदेव कक्ष को जोड़ता हुआ एक सुन्दर व्यास आसन सुश्री आनन्दी प्रधानाचार्य बालिका राजकीय कालेज चौखुटिया ने बनवाया है।

२१. विरमदेव कक्ष : भण्डार कक्ष के पश्चिम में विरमदेव स्वागत कक्ष का निम्रण तलखण्ड में किया गया। इसके निर्माण में छः हजार रुपये का योगदान जमुना माई भल्ट गांव वालों ने दिया।

२२. कृष्ण मन्दिर : इसी विरमदेव कक्ष की छत पर कृष्ण मंदिर का निर्माण तथा भव्य कृष्ण मूर्ति की स्थापना झला निवासी श्री डा० जी०डी० पाण्डेय हाल देहली निवासी ने स्वयं कराई है। इस मंदिर के गुम्बद में कृष्ण की सोलह कलाओं के प्रतीक सोलह कलशों की स्थापना की गई है।

२३. विद्युत व्यवस्था : एक बार विधायक श्री पूरन सिंह मेहरा सांसद हरीश चन्द्र रावत के साथ जिला स्तरीय सारे अधिकारी लखनपुर पधारे, विद्युत विभाग के सुपरिटेन्डेन्ट इन्जीनियर ने स्थान की भव्यता को देखकर तुरंत विद्युत व्यवस्था करवाने की घोषणा की तभी से विद्युत वहां है।

२४. स्वर्ग सीढ़ी : प्रवेश के बांये यज्ञशाला के निकट चौमंजिली स्वर्ग सीढ़ी का निर्माण किया गया हैं जिसके दुमंजिले से उत्तराभिमुख होकर देखने से हिमालय की श्वेत धवल दो चोटियां (जब मौसम साफ हो) दिखती हैं। एक शंकर भगवान का प्रतीक, दूसरा अपने पितरों का प्रतीक है। आप चाहें किसी जाति वंश या गोत्र में उत्पन्न हुए हों। यहां से अपने पितरों को मूक श्रद्धांजलि इस देव स्थल से दे सकते हैं। हर व्यक्ति को कालचक्र के नियमानुसार एक दिन पितर बनना है इसलिए जो आज पितर हैं, उनको सम्मान दें। यही स्वर्ण सीढ़ी का उद्देश्य है। जब भी आप लखनपुर पधारें अपने पितरों को प्रणाम करना न भूलें (इस स्वर्ग सीड़ी के निर्माण के लिये पांच हजार रुपयों का योगदान श्री हरीश चन्द्र सिंह मनराल पुत्र श्री दुर्गासिंह मनराल सौनगांव ने दिया है।) इससे आपका श्रम सार्थक तो होगा ही साथ ही एक सुखानुभूति का ऐहसास भी होगा। यहां से आप रंगीली वैराठ, रामगंगा, अगनेरी, मनवों, दूनागिरी दुर्गा देवी, नैथड़ा, तड़ागताल, मनिला सहित गेवाड़ घाटी का नयनाभिराम दृश्य देखकर मुग्ध हो जायेंगे।

२५. बाल घुसघुसी : मुख्य प्रवेश द्वार के दांये–बांये दोनों तरफ दो घुसघुसिया (फिसलन) बाल–यात्रियों के लिए श्री बहादुरसिंह मनराल भल्ट गांव ने अपनी चाची स्व० गंगा मनराल की स्मृति में बनवाये हैं।

२६. सोरंग : सोरंग़ जो लखनपुर का मुख्य भाग है चूंकि इसका किले से प्रवेशद्वार नहीं मिल सका तब भी ४०० मीटर नीचे उतरकर ६० मीटर की सुरंग में सफाई कर सीढ़ियां व घंटियां दर्शनार्थियों की सुविधा के लिए

लगवाई गई। इसके अन्दर कुछ मूर्तियां भी मिली थी। इसकी सफाई में गंगा सिंह मनराल सोन गांव वालों ने विशेष योगदान दिया।

२७. घुड़साल मरम्मत : अब घुड़साल का उपयोग राहगीर औरपशु, वर्षा, धूप आंधी तथा ओलों से बचने के लिए करते हैं। यह टूटता जा रहा था। आधा टूट चुका था इसलिए लैण्टर डालकर इसकी मरम्मत कर दी गई। बचीराम चौकोटी वालों ने इसकी मरम्मत के लिए आर्थिक सहयोग दिया।

२८. पंचवटी : लखनपुर की सुन्दरता आने वाले समय में बढ़ती जाय इसके लिए बनीकरण जरूरी है यहां मात्र एक सेमल का पेड़ तथा कुछ चीड़ के पेड़ हैं। ६५ वर्षीय स्वतंत्रता सेनानी शेरसिंह बेलवाल हाट वालों ने बताया था यहाँ पहले बहुत मेंहदी होती थी। एक पदम का बहुत बड़ा व पुराना वृक्ष एक अनार का वृक्ष था कई प्रकार की फूलों की झाड़ियां थी। सुरंग में हम बहुत दूर तक जाते थे। अब ये सारे वृक्ष नहीं रहे उनके स्थान पर अब पांच वृक्ष आम, पांगर, पदम, पीपल व बरगद के वृक्ष लक्ष्मणसिंह मनराल पुत्र श्री हीरासिंह मनराल सौनगांव ने अब तक लखनपुर पधारे सज्जनों के सम्मानार्थ तथा भविष्य में आने वालों की सेवा में लगाये हैं।

२९. कत्यूर कुण्ड : घुड़साल के नीचे खाई में दोनों तरफ के किनारों को जोड़कर ४' x १०' x १२' फुट की एक कत्यूर कुण्ड नाम से बरसाती पानी जमा करने के लिए बनाया गया है। इसका लाभ राहगीरों व जानवरों को मिलता हैं इसके निर्माण में लछमनसिंह पुत्र गंगासिंह कारचूली, निवासी का विशेष सहयोग रहा।

३०. गणेश मंदिर : परिसर में प्रवेश करते ही दाहिने हाथ की तरफ गहराई में गणेश मंदिर निर्माण और मूर्ति की प्रतिष्ठा श्रीमती देवकी देवी पत्नी श्री रणजीतसिंह मनराल सोनगांव वालों ने करवाया हैं उनको सपने में निर्देश हुआ कि गणेश की मूर्ति लखनपुर में स्थापित करें।

३१. नरसिंह स्तम्भ : सिंहासन के पांच कदम पश्चिम में प्राचीन दीवारों के ऊपर १२ फुट गोलाई में १६ फुट ऊँचा रक्तवर्ण का कत्यूरों के इस्ट नरसिंह देव का मंदिर कुबेरसिंह कठायत पुत्र नारायण सिंह कठायत टेड़ागांवा वालों ने बनवाया है। कठायत कत्यूरों के सेनापति और दीवान

दीर्घकाल तक रहे। उनको गाड़ीताल में जागीर भी दी गई थी। एक ताम्र पत्र उनके शौर्य को प्रदर्शित करने के लिए उनके पूर्वजों को दिया गया। स्तम्भ में नरसिंह देव की मूर्ति प्रतिष्ठित है जिसको जोशीमठ नरसिंह देव के मन्दिर से लाने का सौभाग्य मुझको मिला था।

३२. दिशासूचक : नये आगुन्तकों की सुविधा के लिए यहां से दिखाई दे सकने वाले प्रमुख स्थानों को एक छिद्रनुमा मार्गदर्शक से देखकर, जिसके ऊपर उस स्थान का नाम भी लिखा गया है, बनाये हैं। एक हनुमान मंदिर के पूर्व में दूसरा व्यास आसन के पश्चिम में है।

३३. एक मन के घन्टे : कीर्तिस्तम्भ के शिखर पर एक मन का विशाल घंटा भी उम्मेदसिंह मनराल (आई०ई०एस०) पुत्र राजेन्द्र सिंह मनराल कुरमाड़ वालों ने चढ़ाया है। तथा एक इतना ही बड़ा घंटा दयाल सिंह मनराल पुत्र जमन सिंह मनराल वोहरा गांव वालों ने चढ़ाया जो जीयामण्डप के आंगन में है।

३४. जीया झूला : एक झूला कुन्दन सिंह पटवाल जैंठा निवासियों ने चढ़ाया जो नरसिंह कक्ष में लगा है। इन्होंने ही एक बड़ा घंटा रामद्वार पर चढ़ाया है।

३५. जलवाबड़ियां : वर्षा के पानी को जमा कर चार जलवाबड़िया बनवाई गई।

३६. हनुमान पट्टिका : हनुमान मंदिर पर एक चक्र तथा एक हनुमान पट्टिका साथ ही दो हाथियों की मूर्तियों श्रीमती गोदावरी रौतेला बालिका इण्टर कालेज चौखुटिया ने चढ़ायी हैं।

३७. १०८ शिव शंकर : यज्ञशाला और शिवालय के मध्य ११ x ६ कदम के दायरे में ६ कतारों में १०८ शिवलिंगों की परिक्रमा बड़े ही आकर्षक ढंग से पशुपतिनाथ काठमाण्डू पद्धति पर बनाई गयी हैं। यह परिक्रमा श्रीमती जयन्ती मनराल पत्नी लक्ष्मण सिंह मनराल सौनगांव ने अपनी पशुपति नाथ यात्रा से प्रेरणा लेकर यहां बनवाई हैं। कत्यूरों के उपास्य देवाधिदेव महादेव के लिए यह श्रद्धांजलि सचमुच बड़ी आकर्षक बन पड़ी है। उत्तर भारत में

तो ऐसी लिंग रचना देखने को नहीं मिलती है। शिवलिंगों को अलकनन्दा से लाने का सुअवसर मुझे मिला।

३८. शेषावतार लक्ष्मण मन्दिर : साधनाकक्ष के पीछे एकदम पूर्व में भूमिगत ८ फुट गहरी १२ फुट लम्बी २ द्वारों वाली गुफा में शेषावतार लक्ष्मण की मूर्त स्थापित की गई है। अपनी भारतयात्रा के दौरान रामेश्वरम से लक्ष्मण मंदिर से यहां स्थापित करने के लिए एक लक्ष्मण मूर्ति में ले आया था। शिखर पर २४ दीपमालायें उज्जैन पद्धति पर सजाई.गई हैं।

३६. सरस्वती मूर्ति : एकदम पूर्व में गायत्री मंदिर के दाहिने एक गोल कुण्ड में जिसमें जल भरा रहता है एक स्तम्भ पर सरस्वती की एक बहुत ही आकर्षक वीणा बजाती ध्यानमग्न मूर्ति जो यही मिली प्रतिष्ठित की गई है। इस स्थान के निर्माण में जगतसिंह मनराल पुत्र नाथू सिंह मनराल नागाड़ वालों का सहयोग रहा।

४०. १०८ घंटिया : जीया मण्डप में १०८ लघु घंटियों की एक माला देवसिंह बिष्ट तथा राजेसिंह बिष्ट कारचूली ने चढ़ायी हैं।

४१. रामद्वार : उपरोक्त सारे निर्माण कार्यो के लिए अपने ट्रक से रामसिंह पटवाल जैंठा जौरासी ने सौ अधिक ट्रक रेत, बजरी, सीमेन्ट, ईटें, लकड़ी आदि सामान यहाँ पहुंचाया था। इस उपलक्ष्य में उनके नाम से एक गेट (रामद्वार) जौरासी गनाई बन मार्ग पर बनाया गया है।

४२. आभार स्तम्भ : संगमरमर की ६२ प्लेटों पर नवदुर्गा व जीयामण्डप के सामने एक सुसज्जित आभार स्तम्भ पर उन महानुभावों की नामवालियां लिखी गई है जिन्होंने सौ रुपये से अधिक धनराशि लखनपुर जीर्णोद्वार में दी है। इसके निर्माण में नन्दन सिंह बिष्ट प्रवक्ता ढौन तथा नारायण सिंह बिष्ट सिरोली वालों का सहयोग सराहनीय रहा।

४३. अभिनन्दन द्वार : गणेश मन्दिर व स्वर्ग सीढ़ी के मध्य अभिनन्दन द्वार का निर्माण देवेन्द्रसिंह मनराल पुत्र विसनसिंह मनराल सौनगांव वालों ने कराया है।

४४. निर्माणाधीन जीयाद्वार : जीया मण्डप के पूर्व में जीया द्वार का

निर्माण इन दिनों श्रीमती मना मनराल पत्नी जमन सिंह मनराल सौनगांव वाली करवा रही हैं।

४५. सिंह द्वार निर्माणाधीन : एकदम पश्चिम में अभिनन्दन द्वार के ठीक सामने एक भव्य द्वार का निर्माण वालमसिंह माहरा पुत्र खीमसिंह माहरा धुधलिया (अहमदाबाद) वाले करवा रहे हैं।

इन सारे निर्माण कार्यों में जहां उपरोक्त महानुभावों ने अपनी तरफ से भारी रकम देकर उक्त निर्माण कराये वहीं बहुत से लोगों ने उदार दिलों से नकद धन राशि देकर निर्माण कार्य में योगदान दिया।

इसमें गेवाड़ के इर्द–गिर्द निवासियों के अलावा प्रवासी पर्वतीय साथियों ने बड़ी श्रद्धा से सहयोग प्रदान किया। साथ ही झला, कारचूली, हाट, कौधार, बसनलगांव, भल्टगांव, बोहरागांव, आगर, मनराल, सौनगाँव, उडलीखान, कुरमाड़, के ग्राम वासियों ने कई बार श्रमदान कर अपना सहयोग दिया, इण्टर कालेज गनाई बालिका, इण्टर कालेज चौखुटिया इण्टर कालेज मासी, जौरासी, हाईस्कूल धामदेवल, कलरौं, तथा प्राइमरी, सौनगांव, उड़लीखान, धामदेवल, नागाड़ पसोली के छात्र–छात्राओं ने भी श्रमदान किया था। साथ ही प्रधान उड़लीखान प्रेमसिंह मनराल, जमन सिंह नेगी प्रधान सौनगाँव, भल्टगांव प्रधान रामसिंह मनराल, कुन्दनसिंह मनराल काशीपुर, प्रधान हाट शेर सिंह मनराल, लक्ष्मन सिंह मनराल कारचूली, जमन सिह मनराल सौनगाँव, रामसिंह मनराल उडलेखान, गोपाल सिंह मनराल सोनगांव, नन्दन सिंह बिष्ट ढौन, कुबेर सिंह कड़ाकोटी, गुलाब सिंह खाती, जगत सिंह देव, चौखुटिया, गजेन्द्र सिंह मनराल हाट, राजेसिंह बिष्ट कारचूली, जगत सिंह मनराल नागाड़, ठाकुरदत्त राम सिंह हरसिंह किसनसिंह उड़लीखान, राजेन्द्रसिंह मनराल कुरमाड़ आदि का पूर्ण सहयोग मिला।

लखनपुर जीर्णोद्वार का उद्घाटन विजय दशमी के पावन पर्व पर १९८८ में किया गया एक विशाल मेला उस दिन लखनपुर में आयोजित किया गया। प्रतिवर्ष जन्माष्टमी और शिवरात्रि पर मेले आयोजित किये गये हैं। अब तक १६ (सोलह) मेले हो चुके हैं। प्रत्येक मेले में हजारों लोग श्रद्धा के साथ भाग लेते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अलावा प्रतियोगीताएं, गायत्री परिवार

द्वारा दीपयज्ञ, निहारिका चौखुटिया द्वारा प्रतिवर्ष मेहंदी प्रतियोगिता फलफूल प्रतियोगिता, खेलकूद प्रतियोगिता, लोकगीत नन्दकिशोर द्वारा सब कुछ यहां आयोजित होता है। कत्यूरों को श्रद्धा सुमन चढ़ाने के साथ ही अतीत के दिनों की अच्छाई व बुराई को याद कर उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं।

भावी योजनाएं : समय आयेगा जब लखनपुर कत्यूरों की कर्मभूमि गेवाड़ ही नहीं सम्पूर्ण उत्तराखण्ड पर्यटक व तीर्थ स्थल बन जायेगा। उसके लिए यहां पेयजल उपलब्ध कराने की यातायात के लिए गनाई–जौरासी मोटर मार्ग (वनमार्ग) को पुनः चालू कराना, वृक्षारोपण, चारदीवारी, सबसे जरूरी है। अब तक निर्मित लाखों रुपयों की परिसम्पत्ति की सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए एक ट्रस्ट का गठन कराना, इसके लिए आप सादर आमंत्रित हैं।

कत्यूरी राज्य के पतन के कारण

उत्थान और पतन युगों से चली आ रही प्रकृति की एक अनिवार्य परम्परा हैं इतिहास का हर पन्ना इसका साक्षी है कि वैदिक काल उसके बाद कौरव पाडव जैसे प्रतिभाशाली राजकुल से लेकर मौर्य, अशोक, गुप्त, प्रतिहार, परमार, भोज, विक्रमादित्य जैसे सुयोग्य प्रशासक, चंगेजखां, सिकन्दर, मुहम्मद गौरी और तुगलक जैसे अक्रान्ता,मध्य कालीन क्षेत्रीय, मुगल और अंग्रेज जैसें विशाल साम्राज्य के संजेता भी सदा नहीं रहे हैं। उस सत्य को कोई झुठला न सका भले ही कारण कुछ भी रहे हों।

इसी प्रकार कत्यूरी नरेश इतिहास में सर्वाधिक लम्बे समय तक धर्मराज्य जिसे स्वर्णिम युग भी कहा जाता है (एक इतिहासकार ने कत्यूरों के बारे में कहा था कि कत्यूरों के सम कत्यूर ही थे) अपने शासन के उत्तरार्द्ध तेरहवीं सदी के बाद अनेक कारणों से उनके राज्य का भी पतन हो गया। उनमें कुछ निम्न कारण थे।

१. कत्यूरों की केन्द्रीय सत्ता का विखर जाना। विशाल राष्ट्र का छोटे–छोटे राज्यों में बंट जाना और उन राजाओं का आपस में सामंजस्य न रहना।

२. इससे इलाकावाद, क्षेत्रवाद को प्रोत्साहन मिला, जिसके कारण असीम वीर बलिदानी होने पर भी कत्यूरों और उनकी प्रजा में राष्ट्रीय भावना के बजाय क्षेत्रीय भावना को प्रोत्साहन मिलता गया। इससे वे भावना के बजाय क्षेत्रीय भावना को प्रोत्साहन मिलता गया। इससे वे कमजोर होते गये।

३. स्थाई वेतन भोगी सैनिकों का न होना सिर्फ सामन्तों की फौजी टुकड़ियों पर निर्भर रहते थे। उनको भी नियमित सैन्य प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं थी।

४. युद्ध प्रणाली की प्राचीन थी। अस्त्र–शस्त्र भी पुराने थे जबकि अंक्रान्ताओं के पास बेहतर हथियार होने लगे थे।

५. सेना में भर्ती योग्यता के आधार पर नहीं वरन परम्परागत विरासत के रूप में होती थी। इससे अयोग्य लोग अधिक आने लगे।

६. स्वामीभक्त और वीर सैनिकों का जिनकी संख्या लाखों में थी काञ्चल अभियान (रानीवाग युद्ध) तथा राजूला–मालूसाही के हूण देश प्रवास में मारा जाना इस जन–धन हानि क्षति ने कत्यूरी राज्य को मानो असहाय कर दिया था।

७. कत्यूरी धर्म युद्ध लड़ते थे जबकि उनके बैरी अक्रान्ता (दुश्मन) छल, बल, षडयंत्रों का सहारा लेकर लड़ते थे। वे समय के साथ नहीं चल सके।

८. गुप्तचर व्यवस्था कमजोर हो गई थी।

९. हर क्षेत्र में दोषपूर्ण उत्तराधिकार को प्रोत्साहन, आपस में अविश्वास और षडयंत्रों की राजनीति का बढ़ना।

१०. आत्मरक्षा में युद्ध करना पहल करने की चूक करने लगे थे।

११. अपने निजि स्वार्थ को सर्वोपरि महत्व देना, जन समस्याओं की अवहेलना, परिस्थितियों से तालमेल बिठाना भूल गये थे। सीमा क्षेत्रों की सुरक्षा की तरफ लापरवाही।

१२. भाग्यवाद पर विश्वास करने लगे। जातिवाद को प्रमुखता, अन्धविश्वासी होना जबकि आक्रान्ता (यवन) जिहाद का नारा देकर पराक्रम का प्रदर्शन करता था।

१३. वर्णव्यवस्था के कारण सारी सुरक्षा का भार क्षत्रियों पर था जिससे समाज में असन्तुलन पैदा होता गया।

१४. आपस में जातियों, उपजातियों, धड़ों, विरादी, आत्मों और भाई भतीजेवाद में बंटने से एक दूसरों के लिए द्वेष, ईर्श्या, नफरत, बैर भाव का बढ़ते जाना इससे गुटबाजी को प्रोत्साहन मिलता गया।

१५. व्यक्तिगत कारण जर–जेवर, जमीन, मान–प्रतिष्ठा–झूठी शान सौकत के लिए मूर्खतापूर्ण हट या निर्णय कर बैठना।

१६. आपस में विश्वासघाट करना, एक दूसरे को नीचा दिखाने की ताक में रहना।

१७. यवन आक्रान्ताओं के आक्रमणों से आहत मैदान क्षेत्र के हजारों परिवारों का सुरक्षा के लिए लगातार दो सौ वर्षों तक पहाड़ों की शरणागत होने से बढ़ती हुई जनसंख्या ने प्रशासनिक सहित कई समस्याओं को जन्म दे दिया। इससे अफरा–तफरी मचनी शुरू हो गई। फलस्वरूप मूल निवासियों की समस्या बढ़ती गई जिनके निराकरण पर ध्यान नहीं दिया गया।

१८. प्राकृति प्रकोप जैसे सूखा, भूकम्प, महामारी, का उस काल में व्यापक प्रकोप होना। इससे नेपाल व तिब्बत, केंशरपार्थियों का यहां प्रवेश उपद्रव करना इससे लूट–पाट बढ़ती गयी और इसका दोष राजा को दिया गया।

१६. इन सब कारणों से राज्य का उत्पादन तथा राज्य कर नहीं के बराबर वसूला जाता जिससे राजखर्चा कर्मचारियों का वेतन देना असम्भव हो गया इसी कारण जनता के कर्मचारियों का गुप्त रूप से दुश्मनों के साथ मिलकर उनको सहयोग देना प्रारंभ हो गया।

२०. कत्यूरी राज्य के विघटन फिर पतन का जो सबसे बड़ा व मूल कारण था उसको कत्यूरों ने स्वयं अपने हाथों उस दिन प्रारम्भ कर दिया था। जब उन्होंने चन्दों को अपना दामाद बनाकर मण्डलीक राजा बना दिया था। चन्द लोगों ने कूटनीति का सहारा लेकर धीरे–धीरे अन्दरखाने अपनी शक्ति बढ़ाकर छल–बल से सारे कत्यूरी राज्य को हड़प दिया।

तिब्बत से कटेहर तक गण्डकी से सतलज तक का राज्य इन बहुत सी ऐतिहासिक भूलों के कारण कत्यूरों की अन्तिम पीढ़ियों ने गवां दिया। इतिहासकार ने कहा था कि "सूर्यवंशी कत्यूरी सम्राटों का उत्तराखण्ड से मानो सूर्यास्त हो गया।"

उपसंहार

कत्यूरी संस्कृति और कत्यूर युग के गहन अध्ययन से एक बात स्पष्ट होती है कि उनके उत्थान काल में व्यक्ति विशेष नहीं बल्कि बहुजन हिताय बहुजन सुखाय को सर्वोपरि मानकर शासन व्यवस्था प्रारम्भ हुई थी।

जब यह देव–भूमि एक छोर से दूसरे छोर तक अस्थिरता लूटपाट, हत्याओं के कारण जंगल का राज्य बनी हुयी थी। हर ताकतवर कमजोर को कुचलता जा रहा था। प्रजा प्राणों के भय से यत्र–तत्र भागती फिरती थी। सुरक्षा और संरक्षण के लिए उन दिनों हताश, विखरती प्रजा को एक श्रृंखला एक छत्र के नीचे लाकर शासन करने वाले महामानवों को कत्यूरों के नाम से इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। यह समय पुराण युग का था।

कत्यूरी किस जाति या वंश के थे, कहां से आये, इन विन्दुओं पर इतिहासकारों में मतभेद हो सकते हैं लेकिन इस राय पर सभी सहमत हैं कि उस अस्थिरता के युग में समाज को एकता के सूत्र में बांध कर धार्मिक वातावरण को पुर्नस्थापित कर मृतप्राय जन–गण में नवप्राणों का संचार किया था। और इसी आस्था को वीरासत के रूप में अगली पीड़ियों को सौंपते गये। जिनके साक्षी हैं उनके द्वारा निर्मित अगणित देवमन्दिर और उनमें विराजे देवगण।

कत्यूर युग का संदेश था "वीर भोग्या वसुन्धरा" कि सम्मानपूर्वक जीवन यापन के लिए स्वधर्म व स्वदेश की रक्षार्थ में सदा संघर्षरत रहो। और भावी पीढ़ियों के पथ प्रदर्शन के लिए अपने अच्छे काम के स्मारक छोड़ जाओ। अपनी सफलता पर मत इतराओ। क्योंकि समय–परिवर्तनशील है। अन्तिम दिनों में कालचक्र की अनिवार्यता को पहचानने में भूल करते हुए भयंकर आत्मघाती निर्णयों के कारण कत्यूरी शासन का पतन हो गया।

पाण्डुकेशर के ताम्रशासनों से प्रतिध्वनी उठती है कि अपने पुण्य और यश की वृद्धि के लिए जनहित के कार्य सम्पादन करो। वर्तमान को समझो। समयके अनुकूल बनो। कत्यूरी अभिलेख प्रमाणित करते हैं कि माता, पिता

गुरु की सेवा, दान, अहिंसा, मितव्यंता व अल्पसंग्रही बनना सुख का सार है। वे पुर्नजनम के सिद्धान्त के प्रबल समर्थक थे।

आज न वे राजा रहे न वे राजधानियां रही। सब भूतकाल के महा विस्मरण सागर में विलीन हो गये हैं। परन्तु अतीत को नकारा नहीं जा सकता है। इतिहासकारों के अनुसार कत्यूरी नरेशों में १६ चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं। वे स्वयं विद्वान थे। विद्वानों का आदर करते थे। भूमि का मालिक (स्वामित्व राजा में निहित था।) राजा होता था। इसलिए उनको भूमियाँ कहा जाता है वे ब्राह्मणों, मन्दिरो व राज्याधिकारियों को भूमि दान में देते रहते थे। उन्होंने जनहित में पाठशालायें, जलाशय, वावड़ियां, नौले, धारे, नहर, हाट बाजार (राजधानिया() धर्मशालायें और अगणित मन्दिर तथा मूर्तियों का आकलन कराया। ये लोक कल्याणकारी उनके तेज राजलक्ष्मी और धर्मपरायण और उदारता के परिचायक हैं।

कत्यूर लोग भी आज की ही तरह मानव थें उनके सामने भी वे सब समस्यायें थी जो वर्तमान में हैं। लेकिन वे अपने पुरुषार्थ से मानव से इतने ऊँचे महामानव बने कि प्रजा ने उनको देवत्तपद पर आसीन नहीं किया बल्कि उनकी पूजा भी प्रारम्भ कर दी थी। इतिहास में राम ओर कृष्ण के बाद यदि किसी राजकुल के राजाओं की पूजा हुई है तो वे सिर्फ कत्यूर ही थे।

इतिहास में सर्वाधिक लम्बे समय तक शासन करने का इस वंश को अवसर मिला। इसके पीछे उनके राजकाज में कोई न कोई गुणात्मक लगाव जनता को लगा होगा। क्या यह काम आश्चर्यजनक और विचारणीय विषय नहीं है कि उनके अवसान के सैकड़ों वर्षों बाद भी उनकी पूजा की जाती है। और उनसे दुःखीजन सुख शान्ति की याचना करते हैं। लोगों की मनोकामना पूरी भी होती हैं। सब कुछ बदल गया है लेकिन कत्यूर काल की कुछ ऐसी अमर व ऐतिहासिक विरासते हैं जो वे अपने पीछे छोड़ गये हैं। जो आज भी उनके देवपुरुष होने का स्वयं प्रमाण देते हैं।

१. कत्यूरों द्वारा निर्मित मन्दिर–कटारमल, पाण्डुकेशर, जागेश्वर, तपोवन, बागेश्वर, बैजनाथ, द्वाराहाट, चम्पावत आदि कई स्थानों पर बने

लखनपुर मेले की झलकियां

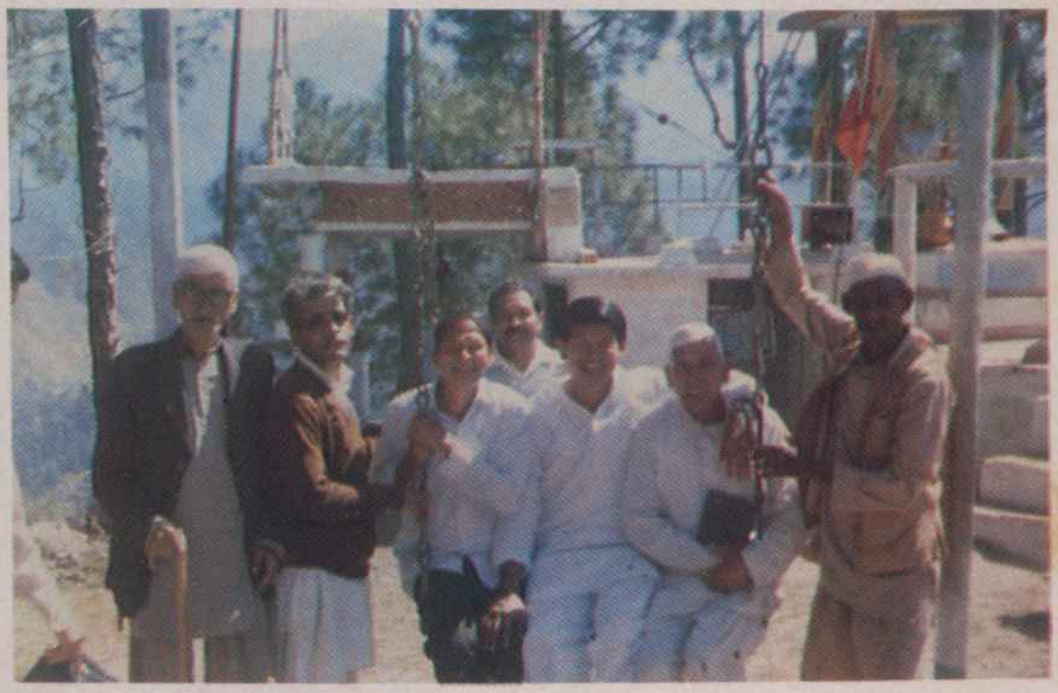

बायें से सर्वश्री शेर सिंह मनराल, श्री पपने, लेखक डा० मनराल, श्री पाठक (वी०डी०ओ०)
हरीश चन्द्र सिंह रावत (सांसद), प्रताप सिंह मनराल (चौकोट), प्रेम सिंह

लखनपुर मेला (शिवरात्रि पर्व)

लखनपुर के दृश्य

हैं और उनमें प्रतिष्ठत देव मूत्रियां व उनकी पूजा विधियां उसी काल से आज तक प्रचलित हैं।

२. प्रत्येक शुभ कार्य पर बनाये जाने वाले ऐपण (अल्पना) का प्रारम्भ कत्यूर काल में हुआ। (डा. डबराल की शोध)

३. कत्यूर काल की अविस्मरणीय देन नारी समाज को मिली वह है महिलाओं के नामान्त में देवी शब्द का प्रचलन। इससे पूर्व सिर्फ महिला का नाम लिखने या बोलने का रिवाज था। कत्यूरी नरेशों ने प्रथम अपने इष्टदेव भगवान शंकर की अर्द्धांगिनी नन्दा (पार्वती) को नन्दा देवी नाम देकर विभूषित किया। बाद में अपनी माता, रानियाँ परिजन तथा आम प्रजा की नारियों के नामान्त में देवी लिखा जाना अनिवार्य कर दिया था। जो अब तक प्रचलित है। (कत्यूरी ताम्र शासनों से प्रमाणित)

४. माप तोल का प्रचलन कत्यूर काल की उपज है। उस युग में भूमि माप, मुट्ठी, माडा, नाली आदि तथा तोल के लिए बैकर, मुट्ठी, तामी, माडा, पसेरी, पाथा, बीसी (पाँच बीसी का एक सौ) का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। पर्वतीय आंचलों में आज भी ये नापतोल ज्यों के त्यों प्रचलित हैं।

५. आम जनता ही नहीं इतिहास कार भी कत्यूर राज्य को धर्मराज्य मानते थे। अभी तक यदि किसी को सच बुलवाना है तो उसको कसम खिलाई जाती है। (स्वा धर्मकी कसम)। जब धर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ने लगी, तभी कत्यूरी राज्य का पतन भी प्रारम्भ हो गया था।

६. कत्यूरों ने अपनी प्रशासनिक व्यवस्था के लिए कई हाट (राजधानियां) बनाई जो आज तक उसी नाम से पुकारे जाते हैं। जैसे १–रणिहाट (टिहरी में) २–खिमसारीहाट (जोशीमठ में) ३–तेलीहाट, ४–सेलीहाट, ५–रणचूलहाट, (कत्यूर में), ६– द्वाराहाट, ७–हाट (गेवांड़ में लखनपुर के नीचे), ८–बगड़ी हाट (चम्पावत में), ९–वाराहाट (उत्तराकाशी), १०–फिणीहाट (चम्पावत के पास), ११–प्रोरी हाट (पिथौरागढ़), १२–कारचूलीहाट (बासूरीसेरा), १३–शीतलाहाट (कोटा भाभर में)।

७. द्वाराहाट में ११७६ संवंत में गुजरदेव ने कालीमन्दिर की स्थापना की थी। वहाँ द्वारिका बनानी चाही थी। गुजरदेव का ध्वस्थ ध्वज आज भी उस युग की उत्कृष्ठ कला और निर्माण शक्ति का प्रतीक है। १२३८ में सुधारदेव द्वारा दूनागिरी मन्दिर की स्थापना हुई थी। उनकी पत्नी पदमिनी देवी द्वारा स्थापित राणीक्षेत्र (रानीखेत) को कौन नहीं जानता है।

८. राजा सोमदेव ने १२७६ में वर्तमान में चौखुटिया के सामने घुघलिया गांव (अगनेरी के निकट) में रामगंगा तट पर जहां से दूनागिरी मन्दिर दिखाई देता हैं एक विशाल गणेश मूर्ति की स्थापना की थी। रामगंगा बाढ ने अब मूर्ति के गिराकर तिरछा कर दिया है। गणेश के नाम पर विकृत होते–२ आगे चलकर पूरी रामगंगा घाटी का नाम गेवाड़ हो गया। गेवाड़ नाम कत्यूर युग का दिया है।

९. कत्यूर नरेशों ने ताम्र शासनों में अपनों को ब्राहमण भक्त कहा है। ब्राहमणों को संस्कृत में द्विज याने जिसका दुबारा जन्म होता है। (मतलब यज्ञोपवित संस्कार होने से) यज्ञोपवित का सीधा सम्बन्ध गायत्री से है। इससे स्पष्ट होता है कि कत्यूर नरेश गायत्री उपासक थे। इसीलिए उन्होंने अपने राज्यान्तर्गत ६ सूर्य मन्दिर–कटार मल, वेलार, बैजनाथ, पमाई, रमक, नैनी, जागेश्वर, ऊखीमठ, गोपेश्वर और मिरत (सतलज) के निकट स्थापित किये थे। उनको ज्ञात हो गया था। इस विश्व में शक्ति संचार और संचालन सूर्य से हो रहा हैं जीवमात्र के प्राणों का रक्षक सूर्य ही है। और गायत्री का देवता सविता (सूर्य) है। अंग्रेज लेखक इलियट ने सिद्ध किया है कि कत्यूरी राजा सूर्य उपासक थे, इसलिये वे श्रेष्ठ पुरुष, विद्वान, ईश्वर, भक्त, दानी, परोपकारी और शक्तिशाली हुए।

१०. अभिवादन सूचक शब्द जो कत्यूर काल से प्रचलित हुए आज तक प्रचलन में यथावत हैं। जैसे स्वस्ति (कल्याण हो), जैकारी (जै देव) स्योकारी (मेरिस्यो), ढोक, मिटाई आदि।

११. पुत्र प्राप्ती के लिए देव मन्दिरों में दीप लेकर रातभर महिलायें साधना कर प्रार्थना करती थी। दीपक लेने की प्रथा उसी युग में प्रारम्भ हुइ आज भी प्रचलित है।

१२. अग्न्यायव : अपने ईष्ट देवा भूमियाँ के लिए अपनी कमाई काप्रथम बैकर (भोजन) अपने उपयोग से पहले निकाल लिया जाता था। यह अग्न्याव हर ग्रहस्थी आज भी देता आ रहा है। यह भी उसी युग की देन है।

१३. कत्यूरों के लिए नौलाकन्थापुरी भूमियाँ या गुसाई भी उसी युग से कहा जाता आ रहा है। आज भी कहते हैं–थोक, घंड़, गरख, नथ, पिछौड़ा, उसी युग के शब्द चले आ रहे हैं।

१४. हरुसेम, ग्वले, कलविष्ट संब उसी जमाने के उनके सहयोगी सेनानायक थें जिनकी आज तक पूजा होती है। परिहार माहरा फड़तियाल, वोरा, तड़ागी, कैडा, कारकी, पटवाल, कड़ाकोटी, बिष्ट, नेगी, कत्यूरों के समकालीन हैं।

१५. वैराठपटट्नम को रंगीली वैराठ का दर्जा राजूला मालूसाई प्रणयगाथा ने ही दिया था।

१६. राजमाता जीया के शौर्य और बलिदान का पवित्र स्मारक रानीबाग की चित्रशिला कत्यूर युग की अमर धरोहर बनकर प्रेरणाश्रोत बन गयी है।

१७. उस सामन्ती युग के कारण अच्छी प्रथाओं के साथ कुद कुप्रथाओं का प्रचलन भी रहा जैसे पातर (नृतकी) वेंट (वेगार) वरदैंस सती प्रथा आदि लेकिन युग की मांग के अनुसार इनका परित्याग किया जा युका है।

१८. कत्यूर काल में प्रकृति पूजा को भी विशेष स्थान दिया गया था। इसलिए उस युग के लगाये गये बरगद, पीपल आदि विशाल वृक्ष आज भी उत्त्राखण्ड में अब तक मिलते हैं। गेवाड़ में अगनेरी, वैराठ, हाट, गनाई, दिगौत, मासी आदि स्थान में बरगद पीपल के विशाल बुजुर्ग वृक्ष जिन्होंने कत्यूरी का उत्थान–पतन देखा उस कत्यूर युग के जीवित साखी हैं।

अन्त में प्रसिद्ध इतिहासकार श्री बद्रीदत पाण्डेय जी के शब्दों में (कुमाऊँ इतिहास पृष्ठ २२५) उपसंहार का समापन करता हूँ वे लिखते हैं :–

(१) कत्यूरी राजा सूर्यवंशी थे।

(२) वे चक्रवर्ती सम्राट थे क्योंकि गिरिराज चक्र चूणामणी के उच्च पद से विभूषित थे।

(३) तब राजभाशा संस्कृत थी (उनके ताम्रपत्रों के अनुसार) बोलचाल की भाषा पाली थी।

(४) उनका राज्य धर्म राज्य था।

(५) वे विद्वान पंडित तथा धर्मात्मा थे। उनका राज्य प्रबंध उच्चकोटी का था, उनके राज्य कर्मचारी स्वकर्मानुरत व योग्य थे।

(५) ह्वेनसांग के समय छटी शताब्दी में उनका राज्य उत्तर में तिब्बत पश्चिम में सतलज नदी तक पूर्व में गण्डक नदी और दक्षिण में रुहेलखण्ड तक था कनिघम और ऐटकिनसन ने भी इसको स्वीकारा है।

पुनश्च : "लखनपुर के कत्यूर" पुस्तक का प्रारम्भ लखनपुर से करने के बाद समापन तपोवन (जोशीमठ) कार्तिकेयपुर में कर रहा हूं।

महापुरुषोवाचः

महापुरुषों ने अपने अनुभवों के आधार पर लोक चेतना को जागृत करने के लिए लोककल्याण और आत्मोत्थान के लिए ऐसी विचारधाराओं का सृजन किया जिसने अगणित व्यक्तियों की जीवन धारा बदल दी जो आज भी उतने ही सार्थक हैं। चन्द वचनामृत संग्रहीत हैं।

(१) स्वर्ग और मुक्ति का आनंद इसी जीवन में संभव है।

(२) उन्नति संपत्ति से नहीं सदगुण और सद्बुद्धि से होती है।

(३) धर्म का प्रथम आधार आस्तिकता और ईश्वर विश्वास है।

(४) धर्म का उद्देश्य मानव को पथभ्रष्ट होने से बचाना है।

(५) अधिकारों का वह हकदार। जिसको कर्तव्यों से प्यार।

(६) जीवन के चार स्तम्भ साधना, स्वाध्याय, संयम सेवा।

(७) मनुष्य की वास्तविक पूँजी–धन नहीं, विचार है।

(८) समय का सदुपयोग सफलता का अमोघ साधन।

(९) करो नहीं ऐसा व्यवहार। जो न स्वयं को हो स्वीकार।

(१०) अध्यापक हैं युग निर्माता। छात्र राष्ट्र के भाग्य विधाता।

(११) मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।

(१२) अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा है।

(१३) ईश्वर को चापलूसी नहीं श्रेष्ठ कार्य पसंद हैं।

(१४) करते वहीं राष्ट्र उत्थान, जिनको है चरित्र का ध्यान।

(१५) अनाचार बढ़ता है तब, सदाचार चुप रहता है जब।

(१६) हंसती व हंसाती जिन्दगी ही सार्थक है।

(१७) जिसने बेच दिया ईमान। करो नहीं उनका गुणगान।

(१८) दिनचर्या को व्यवस्थित बना देना आरोग्य की गारंटी है।

(१९) गायत्री और यज्ञ भारतीय संस्कृति के माता–पिता हैं।

(२०) ईश्वर के घर लगती देर किन्तु नहीं होता अधेंर।

(२१) सतयुग अब आयेगा कब बहुमत जब चाहेगा तब।

(२२) युवा शक्ति अब आगे आओ सृजन सैन्य का शंख बजाओ।

(२३) सच्चा सपूत वही कहलाता जो स्वदेश का मान बढ़ाता।

(२४) जागो शक्ति स्वरुपा नारी तुम हो दिव्य क्रान्ति चिनगारी।

(२५) वही दिलाते सच्ची राह जिन्हें न पद पैसे की चाह।

(२६) हम नशा नहीं खाते, नशा हमें खा जाता है।

(२७) अनीती के प्रतिरोध का साहस जुटाऐं।

(२८) नहीं वस्तु कोई बेकार दृष्टि चाहिए परजनहार।

(२९) करो सदा ऐसा ही काम जिसका हो सुन्दर परिणाम।

(३०) कर न सके जो जन कल्याण उस नर से अच्छा पाषाण।

(३१) सिर अनीति को नहीं झुकायें चाहे प्राण भले ही जाऐं।

(३२) शासक जहाँ चरित्र वही आपदा नित्य नवीन।

(३३) धर्म क्षेत्र में पूज्य वहीं नर त्यागें लोभ, स्वार्थ, आडम्बर।

(३४) ईश्वर तो है केवल एक लेकिन उसके नाम अनेक।

(३५) मीठा बोलने वाला शत्रु को भी मित्र बना लेता है।

(३६) महापुरुष किसी जाति या राष्ट्र के नहीं बल्कि समस्त विश्व के होते हैं।

(३७) धनवान बनना इतना आवश्यक नहीं कि उसके लिए ईमान छोड़ें।

(३८) हरदिन नया जन्म समझें, उसका सदुपयोग करें।

(३९) शुभ साासन की क्या पहचान, दुष्ट दमन सज्जन उत्थान।

(४०) ईश्वर निष्पक्ष और न्यायकारी हैं।

(४१) कर्मफल आज नहीं तो कल अवश्य भोगना पड़ेगा।

(४२) वस्तुतः भगवान एक है नाम उसके अनेक हैं।

(४३) उपासना का अर्थ है भगवान के पास बैठना।

(४४) दोषों, संकीर्णताओं से छुटकारा ही मुक्ति है।

(४५) भाग्यवादी नहीं कर्मवादी बनें।

(४६) इन्द्रियों के दास नहीं स्वामी बनिये।

(४७) सदगुण ही सच्ची सम्पत्ति है

(४८) सन्तोषी सदा सुखी।

(४९) सौ हाथों से कमाओ, हजारों हाथों से बांटो।

(५०) संसार में रहना है तो सही व्यवहार करना भी सीखो।

(५१) भगवान पुरुषार्थ को ही मदद करते हैं।

(५२) स्वास्थ्य रक्षा प्रथम धर्म है।

(५३) धन का उपार्जन ही नहीं सदुपयोग भी करें।

(५४) युवको ! सज्जन और शालीन बनो।

(५५) सहाकारिता और सहयोग से आगे बढ़े।

(५६) मन्दिर जन जागरण के केन्द्र बनें।

(५७) रचनात्मक कार्यों से देश समर्थ बनेगा।

(५८) हम सुधरेंगे जग सुधरेगा।

(५९) स्वार्थ ही नहीं परमार्थ भी सोंचे।

(६०) उठो! जागो। रुकोमत जब तक ध्येय तक ना पहुंच जाओ।

(६१) व्यक्ति निर्माण ही समाज निर्माण है।

(६२) बड़प्पन दुखः देने में नहीं दुखः दूर करने में है।

(६३) पुष्प की तरह खिलो चन्दन की तरह सुगन्धित बनो तो भगवान भी सिर पर रखेंगे।

(६४) जो अकेला खाता है पाप खाता है।

(६५) पशुबलि मानव मात्र पर कलंक है।

(६६) शिक्षा का ध्येय चरित्र निर्माण है कोरी शिक्षा से कोई लाभ नहीं

(६७) देने वाला ही सब कुछ पाता है।

(६८) बच्चों को जन्म ही न दें उनका निर्माण भी करें।

(६९) मानवता की पहली शर्त सजन्नता, मधुर व्यवहार है।

(७०) सद्गुण वह शक्ति है जिससे बड़े से बड़े संकट भी विचलित नहीं कर सकते।

(७१) भोग के साथ दान भी जरूरी है।

(७२) क्राति पहले दिलों में होती है फिर समाज में।

(७३) सद्विचारों का प्रचार तब होता है जब मनुष्य स्वयं उन पर आचरण करता है।

(७४) शिक्षक के तीन गुण–छात्रों से प्रेम, अध्ययन शीलता व तटस्थता

(७५) मनुष्य को स्वाद के लिए नहीं जीवन निर्वाह के लिए खाना चाहिए।

(७६) व्यक्ति की पूजा के बजाय गुणों की पूजा होनी चाहिए।

(७७) कानून से मनुष्य को नहीं बदला जा सकता, समझाने से ही बदला जा सकता है।

(७८) तुम हंसोगे तो दुनियां साथ देगी किन्तु यदि रोने लगे तो देखोगे कि उस वजन को अकेले उठाना पड़ रहा है।

(७९) राजहंस दूध पीते हैं जब छोड़ देते हैं मोती चुगते हैं कीड़े नहीं खाते ऐसी व्रतशीलता निभा कर कोई भी श्रेष्ठ बन सकता है।

(८०) दुनिया से जितना लिया है कम से कम उतना दे जाने की बात तो सोचा करें।

(८१) सत्य में हजार हाथियों के बराबर बल होता है इसलिए अन्तिम विजय सत्य की ही होती है।

(८२) उपलब्धियां इस संसार में भरी पड़ी हैं पर उन्हें प्राप्त करने के लिए ज्ञान, चरित्र एवं साहस चाहिए।

(८३) प्रशंसकों पर ही प्रसन्न हों महत्व उन्हें भी देंगे जो सही आलोचना कर सकते हैं।

(८४) मन का संकल्प और शरीर का पराक्रम यदि किसी काम में पूरी तरह लगा दिया जाए तो सफलता मिल कर रहेंगी।

(८५) विज्ञान बाहर की प्रगति है ज्ञान अनतः की अनुभूति।

(८६) हारता वह है जो हिम्मत गंवा बैठता है।

(८७) जिससे हम कुछ नहीं सीख सकते हैं ऐसा संसार में नहीं है।

(८८) ऐसे ईश्वर को खोज निकालो जो चरित्र बनकर साथ–२ रह सके

(८९) अविश्वासी होना बुरा है पर अन्धविश्वासी होना उससे भी बुरा।

(९०) संपत्ति बहुतों के पास होती है पर उसका सदुपयोग बहुत कम लोग जानते हैं।

(९१) संसार का सबसे बड़ा दिवालिया वह है जिसने उत्साह खो दिया

(९२) जीवन को क्षणभंगुर कहा जाता है इसका तात्पर्य यह है कि उसका एक–एक क्षणभी बर्वाद न किया जाए।

(९३) महानकर्म शक्ति के सहारे नहीं बल्कि दूरदर्शिता के बल पर संपन्न होते हैं।

(९४) नारी धरती की देवी है उसे कामिनी, रमणी बनाकर सर्पिणी स्तर तक न घसीट ले जाओ।

(९५) कभी–कभी जीवित भी मृतकों से बुरे सिद्ध होते हैं या कभी–कभी जीवितों से श्रेष्ठ गिने जाते हैं।

(९६) तुम्हें दया और सेवा करने के लिए भेजा गया है सताने आर छीनने के लिए नहीं।

(९७) दीर्घ जीवन वर्षों के आधार पर नहीं उसमें बन पड़े महत्वपूर्ण कार्यों के आधार पर आंका जाना चाहिए।

(९८) मूर्ख दूसरों के ही दोषों को ही ढूंढते रहते हैं।

(९९) जीवन का लक्ष्य समझें उसको प्राप्त करें।

(१००) सच्चा पुत्र वह है जो पिता के किये हुए की वृद्धि करे।

(१०१) दुनिया की निन्दा स्तुति की पहरवाह न करो। हृदय टटोलो और उसी की आवाज सुनो।

(१०२) जीवन एक संग्राम है इसमें वही विजयी हाता है जो हर परिस्थितियों का सामना करने के लिए सीना तान कर खड़ा रहता है।

(१०३) ईश्वर से मिलने निवेदन करने का सबसे निकटवर्ती स्थान अपना अन्तःकरण है।

(१०४) दूसरों की सहायतावही लोग कर सकते हैं जिनके पास वैभव व पराक्रम है।

(१०५) धर्म धीरज मित्र अरु नारी, आपत काल परिखिऊं चारी।।

(१०६) जहां सुमति तहिं सम्पति नाना, जहां कुमति तहां विपति निधाना।

(१०७) लधु जीवन संवतु पंच दशा, कलपांत न नाश गुमान असा।।

(१०८) आइये सामूहिक प्रार्थना करें। सर्वेः भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

''झोड़ा लखनपुर''

लखनपुराजिया को सौरासा मय्या जै हो जै।
लखनपुरा कत्यूरों की थाता वैण जै हो जै।।
लखनपुरा नौ लाखा कत्यूरा मय्या जै हो जै।
लखनपुरा रंगीली वैराठा वैंणा जै हो जै।।
लखनपुरा आसन वासन मय्या जै हो जै।
लखनपुरा ऊँचौ सिहांसन वैणा जै हो जै।।
लखनपुरा राजुली की यादा मय्या जै हो जै।
लखनपुरा मालूसाई गाथा वैणा जै हो जै।।
लखनपुरा विरमदयो कौ नौलाभवानी जै हो जै।
लखनपुरा धामद्यों की राजधानी जै हो जै।।
लखनपुरा पितरों की काया मय्या जै हो जै।
लखनपुरा रामज्यू की माया वैणा जै हो जै।।
लखनपुरा दुरगा गायत्री मय्या जै हो जै।
लखनपुरा सरस्वती, सावित्री मय्या जै हो जै।।
लखनपुरा महाबली हनुमाना जै हो जै।
लखनपुरा शिवज्यू की थाना वैंणा जै हो जै।।
लखनपुरा झूलों कौ झुलण वैणा जै हो जै।
लखनपुरा उखोवा कुटण वैंणा जै हो जै।।
लखनपुराकतू जै मन्दिर येती जै हो जै।
लखनपुरा के भल मान्यूछौ येती जै हो जै।।
लखनपुरा जन्माष्टमी शिवरात्री माँ जै हो जै।
लखनपुरा कतू भल म्यल लागनी जै हो जै।।
लखनपुरा मन की मुराद मय्या जै हो जै।
लखनपुरा सबों की सुफल है जो जै हो जै।।

(लखनपुर शिलालेख से)

''जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।''

।। ॐ शान्तिः ।।